M.A. HINDI Semester III Course No. : 301

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय

Directorate of Distance & Online Education

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

University of Jammu, Jammu

पाठ्य सामग्री

STUDY MATERIAL

एम॰ ए॰ हिन्दी

M.A. (HINDI)

SESSION : 2023 ONWARDS

पाठ्यक्रम संख्या 301	आलेख संख्या – 1 से 18	सत्र–तृतीय
COURSE CODE : HIN-301	**LESSON NO. 1 - 18**	**SEMESTER-III**

(भाषा विज्ञान)

Co-ordinator :

Prof. Anju Thappa

DD&OE, University of Jammu.

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू –180006 के पास सुरक्षित है।

http ://www.distanceeducationju.in

Printed and published on behalf of the Directorate of Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu by the Director, DD&OE, University of Jammu, Jammu

M.A. HINDI

- ***COURSE CONTRIBUTOR :***

1. **Dr. ASHOK KUMAR** — **Lessons No. 1 – 14**
   Retd. Associate Professor,
   Department of Hindi
   University of Jammu, Jammu.
2. **Mr. DAVINDER SINGH** — **Lessons No. 15**
   Ph.D. Research Scholar, NET
   Department of Hindi
3. **Dr. NISHA JAMWAL** — **Lessons No. 16-17**
   Lecturer in Hindi,
   DDE, JU
4. **Dr. RAJ NATH BHAT** — **Lessons No. 18**
   Professor, Department of Hindi,
   Varanasi

- ***EDITING, PROOF READING & COMPILATION***

Dr. POOJA SHARMA
Lecturer in Hindi, DD&OE,
University of Jammu, Jammu.

© Directorate of Distance & Online Education, University of Jammu, 2023.

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DD&OE, University of Jammu.
- The script writer shall be rsponsible for the lesson/script submitted to the DD&OE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

- ***Print by : Classic Printers / 2023 / 500***

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi Under Non CBCS

Semester 3rd

Course Code HIN-301 **Title : Bhasha Vigyan**
Credits : 5 **Maximum Marks : 100**
Duration of Examination : 3 Hrs. **(a) Internal = 20**
(b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in 2022, 2023 & 2024

इकाई–एक

- भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण।
- भाषा व्यवस्था और व्यवहार।
- भाषा विज्ञान का नामकरण, परिभाषा और क्षेत्र।
- भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं–वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक।
- समाज भाषाविज्ञान का परिचय, समाज भाषा विज्ञान और वर्णनात्मक भाषा विज्ञान में अन्तर।
- समाज भाषा विज्ञान और भाषा के समाजशास्त्र में अन्तर।

इकाई–दो

- स्वन, स्वानिकी, स्वर और व्यंजन : परिभाषाएं।
- वाक् अवयवों का परिचय।
- स्वरों का वर्गीकरण।
- मानस्वर।
- घोषत्व, प्राणत्व, स्थान और प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण।

इकाई–तीन

- स्वनिम : परिभाषा, स्वरुप और भेद।
- स्वनिम और संस्वन में भेद।
- स्वनिम विश्लेषण पद्धति–सूचक, सामग्री संकलन, संकलित सामग्री से निम्नतम युग्मों और संदिग्ध युग्मों को छांटना, वितरण के आधार पर स्वनिम और संस्वन की पहचान।
- शब्द, पद, धातु और प्रातिपादिक : परिभाषाएं।
- मर्षिम : परिभाषा और भेद।
- व्याकरणिक कोटियों का परिचय।
- वाक्य : परिभाषा और भेद।
- समीपी संघटक।

इकाई–चार

- हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास।
- देवनागरी लिपि : विशेषताएँ और मानकीकरण।
- हिन्दी की संवैधानिक स्थिति।

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोर्स कोड HIN-301 के प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा

मुख्य परीक्षा (External Exam) अंक = 80 समय = तीन घण्टा

(क) शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चार दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न। 10×4=40

(ख) शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चार लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न। 6×4=24

(ग) शत–प्रतिशत विकल्प के साथ चार अति लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न। 3×4=12

(घ) चार वस्तुनिष्ठ विकल्परहित प्रश्न पूछे जायेंगे। 1×4=4

विषय सूची

आलेख सं0	आलेख	पृष्ठ संख्या
1.	भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण	4
2.	भाषा व्यवस्था और भाषा–व्यवहार	9
3.	भाषाविज्ञान का नामकरण, परिभाषा और क्षेत्र	13
4.	भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं–वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक	19
5.	समाज भाषा–विज्ञान का परिचय तथा समाज भाषा–विज्ञान और वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान में अन्तर	22
6.	स्वन, स्वानिकी, स्वर और व्यंजन : परिभाषाएँ	29
7.	वाक् अवयवों का परिचय	38
8.	स्वरों का वर्गीकरण	43
9.	व्यंजनों का वर्गीकरण	52
10.	स्वनिम (Phonemics)	58
11.	स्वनिम विश्लेषण पद्धति	64
12.	मर्षिम : परिभाषा और भेद	68
13.	व्याकरणिक कोटियों का परिचय	73
14.	वाक्य परिभाषा और भेद	79
15.	हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास	88
16.	देवनागरी लिपि की विशेषताएँ	111
17.	देवनागरी लिपि का मानकीकरण	118
18.	हिन्दी की संवैधानिक स्थिति	125

Course Code : Hin-301 **Lesson No. 1**

भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण

1.4 सारांश

1.5 कठिन शब्द

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.7 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप–

– भाषा किसे कहते हैं, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

– भाषा विज्ञान में भाषा के किस रूप को लिया जाता है, उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

– मानव की भाषा के क्या अभिलक्षण है, यह ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

अपने व्यापकतम रूप से तो 'भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते है तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।' किन्तु भाषाविज्ञान में हम जिस भाषा का अध्ययन विश्लेषण करते हैं, वह इतनी व्यापक नहीं। उसमें हम उन सभी साधनों को नहीं लेते जिनके द्वारा विचारों को व्यक्त करते हैं और न उसे लिया जाता है जिसके द्वारा हम सोचते हैं। भाषा उसे कहते हैं जो बोली और सुनी जाती है और बोलना भी पशु–पक्षियों का नहीं, गूंगे मनुष्यों का भी नहीं, केवल बोल सकने वाले मनुष्यों का'।

1.3 भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण

'भाषा' शब्द का अर्थ है–'बोलना' या 'कहना'। अर्थात् 'जिसे बोला जाए वह भाषा है।' प्लेटो के अनुसार विचार और भाषा में थोड़ा ही अन्तर है। 'विचार आत्मा की मूक बातचीत है, जब यही बातचीत ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा कहते हैं।' स्वीट की परिभाषा भी इसी प्रकार की है–'ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा–विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।' अधिकांश आधुनिक भाषा–शास्त्रियों ने भाषा की परिभाषा लगभग एक–सी दी है। बी ब्लॉक तथा जी.एल. ट्रेगर के अनुसार– 'भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्‌वारा मानव परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करता है।'

ब्लॉक तथा ट्रेगर की उपर्युक्त परिभाषा में चार बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है :

1. प्रत्येक भाषा में एक व्यवस्था होती है जिसे उसके बोलने वाले भली–भांति समझते हैं। यह व्यवस्था ध्वनि, शब्द रूप, वाक्य सभी स्तरों पर होती है। उदाहरण के लिए, हिन्दी में एक ही ध्वनि या ध्वनि–समूह की अनन्त आवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती और ञ, ड़, ढ़, वर्ण शब्द के प्रारम्भ में नहीं आते। वाक्य स्तर पर हिन्दी में कर्ता+कर्म+क्रिया का क्रम होता है। कोई प्रत्यय सभी शब्दों के साथ जुड़ने के लिए स्वतंत्र नहीं होता जैसे 'ता' प्रत्यय 'सुन्दर' के साथ जोड़ कर 'सुन्दरता' शब्द बनाया जा सकता है, पर सफेद के साथ जोड़कर 'सफेदता' नहीं बनाया जा सकता।

2. वाक्प्रतीकों का यह तात्पर्य है कि उच्चारण मुँह से हुआ हो और उसका कुछ अर्थ हो। ' पेड़', 'पक्षी', 'धूप', 'हँसना' शब्दों का अगर हम उच्चारण करेंगे तो ये वाक्प्रतीक माने जाएँगे क्योंकि उनका अर्थ भी है।

3. वाक्प्रतीकों के यादृच्छिक होने से आशय यह है कि ध्वनि या शब्द का जो अर्थ है वह यों ही बिना किसी तर्क, नियम या कारण आदि के बिना मान लिया गया है। जिन भावों, वस्तुओं के लिए हमने जो शब्द चुने हैं, उनसे उनका आंतरिक संबंध नहीं है। 'पुस्तक' को हम 'पुस्तक' इसलिए कहते हैं कि परम्परागत रूप से उसे 'पुस्तक' कहा जा रहा है। यदि वाक्प्रतीक यादृच्छिक न हो कर अनिवार्य होते तो संसार में एक ही भाषा होती।

4. भाषा के द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। विचारों का आदान–प्रदान करने के लिए भाषा के अतिरिक्त अन्य साधन भी हैं, जैसे हाथ से संकेत करके किसी को बुलाना, विदाई के समय हाथ हिलाना आदि। किन्तु संकेतों से सभी प्रकार के विचारों का अदान–प्रदान संभव नहीं है। यह कार्य भाषा द्वारा ही हो सकता है। सभी मानव एक ही भाषा द्वारा अपने विचारों का अदान–प्रदान नहीं कर सकते। एक समूह विशेष की अपनी भाषा होती है, जिसका प्रयोग उस समूह के सदस्य करते हैं।

अतः भाषा, उच्चारण–अवयवों से उच्चरित, यादृच्छिक (Arbitrary) ध्वनि–प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज–विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।

भाषा के अभिलक्षण

अभिलक्षण से आशय है, किसी पदार्थ की वह विशेषता जिसके द्वारा वह पहचाना जाए। किसी भी वस्तु के अभिलक्षण ही उस वस्तु को अन्य वस्तुओं से अलगाते हैं। मानव–भाषा के अभिलक्षण उसे अन्य सभी प्राणियों की भाषा से अलग करते हैं। मानव की भाषा में निम्नलिखित अभिलक्षण मिलते हैं :–

1. **सृजनात्मकता या उत्पादन क्षमता–** भाषा में यह सामर्थ्य है कि सीमित शब्दों के आधार पर ऐसे वाक्यों की रचना की जा सकती है जो उससे पहले उसी रूप में प्रयोग में नहीं लाए गए। जिन्हें वक्ता ने पहले न कहा हो या श्रोता ने पहले न सुना हो। ऐसा होते हुए भी अदान–प्रदान में कोई कठिनाई नहीं होती। यह सृजनात्मकता श्रोता और वक्ता दोनों की भाषिक क्षमता में होती है।

2. **यादृच्छिकता–** भाषा में किसी शब्द का अर्थ के साथ निश्चित संबंध नहीं होता। सभी शब्दों के अर्थ स्वेच्छा से रखे गए हैं। यादृच्छिकता अर्थ के अतिरिक्त व्याकरण के स्तर पर भी पाई जाती है। जैसे कर्त्ता कारक के साथ हिन्दी में 'ने' का प्रयोग किया जाता है– राम ने छड़ी ली। अंग्रेजी में कर्त्ता कारक के साथ कारक चिन्ह का प्रयोग नहीं किया जाता है– (Ram took a Stick) हिन्दी के वाक्यों में कर्ता+कर्म+क्रिया का क्रम होता है जबकि अंग्रेजी में कर्ता+क्रिया+कर्म का क्रम होता है। जैसे हिन्दी में राम ने साँप को मारा। अंग्रेजी में Ram killed a snake.

3. **द्वैतता–** भाषा में दो तत्व अवश्य होते हैं। एक को स्वनिम कहा जाता है, दूसरे को मर्षिम। स्वनिम भाषा की एक ऐसी इकाई है, जो मिलती–जुलती ध्वनियों या ध्वनि गुणों का प्रतिनिधित्व करती है। स्वनिम का संबंध किसी भाषा–विशेष से होता है। लघुतम अर्थयुक्त इकाई को मर्षिम कहा जाता है। इसका संबंध भाषा के रूप–पक्ष से भी है और अर्थ पक्ष से भी। भाषा की इस द्वैतता को अभिरचना की द्वैतता भी कहा जाता है क्योंकि भाषा स्वनिम और मर्षिम के स्तर पर पाई जाने वाली अभिरचना (Pattern) का योग है।

4. **श्रोता और वक्ता में परस्पर परिवर्तनीयता–** भाषा का उपयोग करते समय वक्ता और श्रोता की भूमिकाऐं बदलती रहती हैं। बातचीत में वक्ता अपनी बात रखता है श्रोता सुनता है। जब श्रोता अपनी बात रखता है, उस समय वह वक्ता की भूमिका ग्रहण करता है और वक्ता श्रोता की।

5. **परिवर्तनशीलता–** मानव की भाषा परिवर्तित होती रहती है। यह परिवर्तन शब्द और अर्थ दोनों स्तरों पर होता है। संस्कृत–काल का 'कर्म' शब्द प्राकृत–काल में परिवर्तित हो कर 'कम्म' हो गया तो आधुनिक काल में 'काम'। 'प्रवीण' शब्द का मूल अर्थ था 'वीणा बजाने में चतुर', लेकिन अब इस शब्द का अर्थ केवल 'चतुर' है। मानवेतर जीवों की भाषा में परिवर्तन नहीं होता।

6. **अंतरणता (Displacement)–** मानव की भाषा कालांतरण कर सकती है। भूत, वर्तमान और भविष्य के संबंध में कुछ कहने की सामर्थ्य मानव भाषा में है। मानव–भाषा में अमूर्त को भी अभिव्यक्त किया जा सकता है, जैसे न्याय, ईश्वर, स्वर्ग–नरक, पाप–पुण्य आदि का बोध कराया जा सकता है। मानव

की भाषा में अभावात्मक को भी अभिव्यक्त किया जा सकता है, जैसे आकाश–कुसुम, व्योमपुरी, वन्हया–पुत्र आदि।

7. **विविक्तता** (Discretness)– मानव भाषा कई इकाइयों में विभाज्य है। उदाहरण के लिए वाक्य एक या एक से अधिक 'शब्दों' से बनता है, 'शब्द' एक से अधिक 'ध्वनियों' से। ऐसी विभाज्यता अन्य जीवों की भाषा में नहीं मिलती।

8. **अनुकरण ग्राह्यता**–मानव की भाषा आनुवंशिक (Hereditary) नहीं होती, जब कि जीव–जन्तुओं की भाषा अनुवंशिक होती है। मानव भाषा को समाज–विशेष से अनुकरण द्वारा सीखता है। अनुकरण द्वारा व्यक्ति एक से अधिक भाषाएँ भी सीख सकता है।

9. **असहजवृत्रिकता** (Non-instinctivity)– मानवेतर प्राणी अपनी सहजवृत्तियों–भूख, प्यास, भय, कामेच्छा आदि–की अभिव्यक्ति के लिए मुँह से कुछ ध्वनियाँ निकालते हैं जिन्हें उस अर्थ में भाषा नहीं कहा जा सकता, जिस अर्थ में मानव की भाषा को कहा जा सकता है। मानव की भाषा असहजवृत्तिक होती है।

10. **मौखिकता–श्रव्यता**– मानव की भाषा मौखिक–श्रव्य है, क्योंकि यह मुँह से बोली जाती है और कान से सुनी जाती है।

11. **भाषा में विशेषीकरण** (Specialization)– प्रत्येक मानवीय भाषा की अपनी एक विशेष पद्धति है, जिसके द्वारा अपने ढाँचे और अर्थ में सीमित रहते हुए वह भाव–संप्रेषण का कार्य सरलता से करती है। अपने बोध्य अर्थ या क्रिया से इसका साक्षात संबंध भौतिक नहीं के बराबर होता है।

1.4 सारांश

ये सभी अभिलक्षण, समवेत रूप से, केवल मानव–भाषा में ही मिलते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त अभिलक्षण मिलकर मानव–भाषा को मानवेतर भाषा से अलग करते हैं।

1.5 कठिन शब्द

1. यादृच्छिक
2. वाक्प्रतीक
3. अभिलक्षण
4. सृजनात्मक
5. द्वैतता
6. स्वनिम
7. मर्षिम

8. अभिरचना

9. प्रवीण

10. मानवेतर

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 भाषा किसे कहते हैं ?

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 2 भाषा के अभिलक्षणों पर चर्चा करें।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 3 भाषा की परिभाषा देते हुए इसके अभिलक्षणों पर प्रकाश डालें।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

1.7 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

———————

भाषा व्यवस्था और भाषा–व्यवहार

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 भाषा व्यवस्था और भाषा–व्यवहार

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्द

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.7 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप भाषा व्यवस्था और भाषा–व्यवहार को समझने के साथ–साथ इन दोनों में परस्पर जो अन्तर है, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

भाषा व्यवस्था संरचना के निश्चित नियमों का निर्माण करती है। वह प्रकृति में निश्चित, निर्धारित एवं समरूपी होती है तथा भाषा व्यवहार व्यक्ति के द्वारा होता है। इसमें व्यक्ति स्वयं शब्द चयन, वाक्य रचना, प्रयोग वाचन शैली आदि का उपयोग करता है। भाषा के ये दो रूप मानने का श्रेय मूलतः सस्यूर को है, उन्होंने संक्षेप में इन पर विचार किया। बाद में त्रुबेत्स्कॉय, येल्मस्लव तथा चॉम्स्की आदि ने इनके अन्तर कई दृष्टियों से स्पष्ट किए।

2.3 भाषा व्यवस्था और भाषा–व्यवहार

आधुनिक भाषा–विज्ञान के जनक सस्यूर ने भाषा–अध्ययन के दो आयामों की चर्चा की–भाषा व्यवस्था (Langue) और भाषा–व्यवहार (Parole)। उनका मानना है कि भाषा सामाजिक वस्तु है। सामाजिक होने

के कारण उसका एक पक्ष संस्थागत है, जिसे उन्होंने 'भाषा–व्यवस्था' की संकल्पना द्वारा अभिव्यक्त किया। भाषा–व्यवस्था सामाजिक संस्थान की तरह एक सामाजिक व्यवस्था है। भाषा व्यक्ति की निजी इच्छा या प्रतीकों के अपने माध्यम (उच्चारण या लेखन) से नियंत्रित नहीं होती। वह व्यक्ति से जुड़ी रहकर भी व्यक्ति की अपनी सीमा से मुक्त होती है, इसी कारण भाषा अपनी प्रकृति में समरूपी (Homogeneous) होती है। भाषा व्यवस्था अमूर्त और रूपपरक है।

सस्यूर ने भाषा–व्यवस्था को मूल्यपरक माना और इसी कारण उसे शुद्ध 'रूप' के संदर्भ में देखा। उनका कहना है कि भाषा के शुद्ध रूप में केवल 'मूल्य' होते हैं। इस तथ्य को उन्होंने शतरंज के खेल द्वारा समझाया। शतरंज में प्रत्येक मोहरे का एक 'मूल्य' होता है, जैसे 'प्यादा' एक घर चलता है और दूसरे मोहरे को तिरछा मारता है। 'घोड़ा' ढाई घर चलते समय किसी दूसरे मोहरे को फांद भी सकता है, आदि। मोहरे आकार में छोटे–बड़े हो सकते हैं, उनका निर्माण लकड़ी, प्लास्टिक, धातु आदि से किया जा सकता है। रंग–रूप, आकार या मोहरे के निर्माण के लिए उपयोग की गई सामग्री के आधार पर एक मोहरे को दूसरे मोहरे से अलग नहीं किया जाता। एक मोहरा दूसरे मोहरे से 'मूल्य' के आधार पर अलग है। यदि एक मोहरा खो जाए तो उसके स्थान पर अलग दिखाई देने वाली किसी अन्य वस्तु को उस मोहरे का 'मूल्य' देकर काम चला लेते हैं। जिस प्रकार शतरंज का खेल एक व्यवस्था है, उसी प्रकार भाषा की किसी ध्वनि की सार्थकता उसके मूल्य में होती है, जिसे भाषा की अपनी व्यवस्था उसे प्रदान करती है।

अमरीकी भाषा वैज्ञानिक चॉम्स्की ने भाषा–व्यवस्था (Langue) के समानांतर जो संकल्पना प्रस्तुत की उसे आज 'भाषिक क्षमता' (Competence) के नाम से जाना जाता है। 'भाषिक क्षमता' व्यक्ति के चेतन एवं अवचेतन में स्थित वह भाषा–ज्ञान है, जिसके सहारे वह भाषा बोलता और समझता है। किसी भाषा की स्वनिक आकृति तथा अर्थ को निर्धारित करने वाली व्यवस्था को आत्मसात करना ही 'भाषायी क्षमता' है।

सस्यूर का यह कहना भी है कि भाषा अपनी प्रकृति में सतत् परिवर्तनशील है। भाषा की परिवर्तनशीलता को उन्होंने 'भाषा–व्यवहार' की संकल्पना द्वारा परिभाषित किया। जिस प्रकार मानव–संबंधों के अनेक रूप होते हैं और मानव की व्यक्तिगत आवश्यकताओं में विविधता होती है, उसी प्रकार भाषा–व्यवहार 'विषमरूपी' (Hetrogeneous) होता है। वैयक्तिक संबंधों से जुड़े होने के कारण वह भाषा का व्यष्टि–रूप हैं। जो हम बोलते या सुनते हैं वह 'भाषा व्यवहार' है। 'भाषा–व्यवहार' 'भाषा–व्यवस्था' का अभिव्यक्त रूप है। अलग–अलग संदर्भों और भूमिकाओं में व्यक्ति की भाषा में परिवर्तन आता रहता है। उदाहरण के रूप में अगर हमारे सामने ऐसा व्यक्ति है जो हमारे लिए सम्माननीय है या जिसका सामाजिक स्तर हमसे ऊँचा है तो उसे बैठने के लिए हम कहेंगे–'आइए बैठिए'। अगर उसका सामाजिक स्तर हमसे नीचा है तो हम कहेंगे– 'तू बैठ'। वक्ता या श्रोता की भूमिका और देश–काल की परिस्थितियों के दबाव के कारण भी भाषा में परिवर्तन होता है। इसी कारण भाषा व्यवहार अपनी प्रकृति में नवप्रवर्त्तनकारी (Innovative) होता है।

चॉम्स्की ने 'भाषा–व्यवहार' (Parole) के समानांतर जो संकल्पना प्रस्तुत की, उसे आज 'भाषिक व्यवहार' या ''भाषायी सम्पादन' (Performance) कहा जाता है। भाषिक व्यवहार, भाषिक ज्ञान का किसी निश्चित स्थान

और समय पर निश्चित प्रयोग है। चॉमस्की के अनुसार भाषिक व्यवहार भाषा के शुद्ध रूप का दूषित एवं विकृत प्रतिफलन होता है।

'भाषा–व्यवहार' का एक ढाँचा होता है, जिसके कम–से–कम दो भाग होते हैं। एक प्रेषण (वक्ता) का ढाँचा, दूसरा (श्रोता) ग्रहण का ढाँचा। 'भाषा–व्यवस्था' की आवृत्ति नहीं होती है। अगर एक वाक्य असंख्य बार बोला जाए तो 'भाषा–व्यवस्था' की दृष्टि से वह एक वाक्य होता है, जबकि 'भाषा–व्यवहार' की दृष्टि से असख्य वाक्य होते हैं लेकिन ढाँचा बनाते समय हम उसका सामान्यीकरण कर लेते हैं। 'भाषा–व्यवस्था' में ऐसा साधु वाक्य संभव है जिसका अन्त न हो लेकिन 'भाषा व्यवहार' में ऐसा संभव नहीं हैं। कई मिनट में समाप्त होने वाला वाक्य 'भाषा व्यवस्था' में सम्भव है, पर उसे बोलना या समझना कठिन होता है। प्रेषण और ग्रहण की दृष्टि से वक्ता का वाग्यंत्र और श्रोता का श्रवण–यंत्र 'भाषा व्यवहार' को प्रभावित करने वाला तत्व है। वाग्यंत्र के कारण ही व्यक्ति–विशेष की पहचान होती है। 'श्रवण–यंत्र में खराबी होने से 'भाषा–व्यवहार' प्रभावित होता है। स्मरण शक्ति की सीमा भी 'भाषा–व्यवहार' को प्रभावित करती है। लिखित व पठित रूप में इस शक्ति की सीमा कुछ बढ़ जाती है जबकि बोलते या सुनते समय इसकी सीमा कुछ कम हो जाती है। परिवेश का प्रभाव भी 'भाषा–व्यवहार' पर पड़ता है। शोर के समय हम ठीक तरह से नहीं सुन पाते।

2.4 सारांश

सस्यूर के अनुसार 'भाषा–व्यवस्था' और 'भाषा–व्यवहार' की परिभाषा एक दूसरे का संदर्भ ले कर ही की जा सकती है। भाषा तभी जीवंत मानी जा सकती है जब भाषा के ये दोनों पक्ष द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति की स्थिति में हों। 'भाषा–व्यवस्था' और 'भाषा–व्यवहार' युग्म की सार्थकता स्वीकार करने के बाद भी सस्यूर ने भाषा–विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के लिए समरूपी 'भाषा–व्यवस्था' (Langue) को ही स्वीकार किया। 'भाषा–व्यवस्था' का अध्ययन करने के लिए सामग्री 'भाषा–व्यवहार' से ही प्राप्त होती है।

2.5 कठिन शब्द

1. रूपपरक
2. तिरछा
3. आत्मसात
4. विषमरूपी
5. प्रतिफलन
6. प्रेषण
7. सामान्यीकरण
8. वाग्यंत्र

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 भाषा व्यवस्था पर टिप्पणी कीजिए।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 2 भाषा व्यवहार पर चर्चा कीजिए।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 3 भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार पर प्रकाश डालिए।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 4 सस्यूर ने भाषा–अध्ययन के कितने आयामों की चर्चा की है ?

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

2.7 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

————

भाषाविज्ञान का नामकरण, परिभाषा और क्षेत्र

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 भाषाविज्ञान का नामकरण, परिभाषा और क्षेत्र

3.3.1 भाषाविज्ञान का नामकरण

3.3.2 भाषाविज्ञान की परिभाषा

3.3.3 भाषाविज्ञान का क्षेत्र

3.4 निष्कर्ष

3.5 कठिन शब्द

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप–

– भाषा विज्ञान शब्दों के नामकरण सम्बन्धी ज्ञान को प्राप्त करेंगे।

– भाषा विज्ञान किसे कहते हैं ? इससे अवगत होंगे।

– भाषा विज्ञान के क्षेत्र को समझ सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने वाली ज्ञान की शाखा को भाषा–विज्ञान कहा जाता है। अर्थात् भाषाओं का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन करना एवं उसे व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करना ही भाषा–विज्ञान का प्रमुख कार्य है। इस प्रकार भाषा–विज्ञान एक तरफ भाषा सामग्री का विवेचन–विश्लेषण करता है, दूसरी तरफ भाषा की रचना एवं उसके प्रयोग से सम्बन्धित नियमों का निर्धारण करता है।

3.3 भाषाविज्ञान का नामकरण, परिभाषा और क्षेत्र

3.3.1 भाषाविज्ञान का नामकरण

प्राचीन भारत में भाषा के विभिन्न अंगों के अध्ययन के लिए कोई एक नाम प्रचलित नहीं था। विभिन्न अंगों के अध्ययन के लिए विभिन्न नाम थे, जैसे–शिक्षा, निरुक्त, व्याकरण, प्रतिशाख्य आदि।

पश्चिम में वर्तमान भाषा–विज्ञान का आरंभ 1786 ई॰ में विलियम जोन्स द्वारा हुआ। उन्होंने संस्कृत, लैटिन, ग्रीक के तुलनात्मक अध्ययन के संकेत दिए। पश्चिम में भाषा–विज्ञान के लिए सर्वप्रथम 'कम्पेरेटिव ग्रामर' (Comparative Grammar) नाम दिया गया। वहाँ पहले व्याकरण और भाषा–विज्ञान में कोई भेद नहीं किया जाता था। जब यह स्पष्ट हुआ कि भाषा–विज्ञान केवल तुलनात्मक व्याकरण नहीं है, तब इस नाम को छोड़ दिया गया। भाषाओं की तुलना पर बल देने के कारण 18वीं शताब्दी में इसे कम्पेरेटिव फिलालोजी (Comparative Philology) नाम दिया गया। भाषा–विज्ञान तुलनात्मक ही होता है, इसलिए 'कम्पेरेटिव' शब्द का त्याग कर दिया गया। डेवीज ने 1817 ई॰ में भाषा–विज्ञान के लिए ग्लासोलोजी (Glossology) शब्द का प्रयोग किया, पर यह नाम भी नहीं चला। 1841 ई॰ में प्रिचर्ड ने ग्लाटोलोजी (Glattology) नाम प्रस्तुत किया जो चल नहीं सका।

उपर्युक्त नामों में से फिलालोजी शब्द आज तक चल रहा है। अँग्रेजी में इसके लिए साईंस ऑफ लेंग्वेज (Science of Language) नाम का प्रचलन है। वर्तमान में अधिक प्रचलित नाम लिंग्विस्टिक्स (Linguistics) है। यह शब्द लैटिन के शब्द लिंगुआ (Lingua) से बना है, जिसका अर्थ है–जीभ। भाषाविज्ञान के अर्थ में लेंगिस्टीक (Linguistique) शब्द का प्रचलन फ्रांस में हुआ और 18वीं शताब्दी के चौथे दशक में अंग्रेजी में यह Linguistic नाम से ग्रहण किया गया। छठे दशक में यह शब्द (Linguistics) के रूप में अपनाया गया और आज तक यही नाम अधिक प्रचलित है। जर्मन भाषा में भाषाविज्ञान के लिए स्प्राचविस्सेनशाफ्ट (Sprachwissenschaft) नाम है। रूसी भाषा में इसके लिए 'यज़िकाज्नानिमे' शब्द है। इसमें 'यज़िक' का अर्थ भाषा है और 'ज्नानिमे' का अर्थ विज्ञान है।

लिंग्विस्टिक्स (Linguistics) के अर्थ में 'भाषा–विज्ञान' जैसा विषय भारत में नहीं था। भारत में भाषा के अध्ययन के लिए व्याकरण, शब्दानुशासन, शब्दशास्त्र, निर्वचनशास्त्र आदि नाम भी प्रचलित रहे हैं। लिंग्विस्टिक्स के अर्थ में वर्तमान समय में तुलनात्मक भाषा–विज्ञान, भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, तुलनात्मक भाषाशास्त्र, शब्दशास्त्र, भाषालोचन, भाषिकी, भाषातत्त्व, भाषाविचार आदि नाम प्रचलित हैं। इन सभी नामों में से 'भाषाविज्ञान' अधिक प्रचलित नाम हैं।

डॉ उदयनारायण तिवारी ने 'भाषाविज्ञान' और 'भाषाशास्त्र' में अंतर माना है। वे पुरानी भाषाओं के अध्ययन–विश्लेषण को 'भाषा–विज्ञान' के अन्तर्गत रखते हैं जबकि आधुनिक भाषाओं और बोलियों के अध्ययन–विश्लेषण को 'भाषाशास्त्र' के अन्तर्गत। उनका यह मत मान्य नहीं है। 'भाषाविज्ञान' में भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है, चाहे भाषाएँ पुरानी हों या नई। 'भाषाशास्त्र' नाम को 'भाषाविज्ञान' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। डॉ देवीशंकर द्विवेदी 'भाषाविज्ञान' के स्थान पर 'भाषिकी' का प्रयोग करते हैं। परन्तु यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हो सका है। वे 'भाषाविज्ञान' (Linguistic Science) शब्द को वर्णनात्मक मानते हैं और 'भाषिकी' (Linguistics) को पारिभाषिक शब्द। पारिभाषिक शब्द के रूप में 'भाषाविज्ञान' शब्द का प्रयोग वे उचित नहीं मानते। डॉ. मनमोहन गौतम के अनुसार–''भाषा–विज्ञान' पद को ग्रहण करने में हमें कठिनाई नहीं होनी चाहिए, क्योंकि 'भाषा' और 'विज्ञान' (विकल्परहितज्ञान) दोनों शब्द संस्कृत (और फलस्वरूप हिन्दी) साहित्य में प्रयुक्त होते आए हैं। बहुमत भी इसी शब्द के पक्ष में हैं। अतः भाषा–विज्ञान नाम ग्रहण कर लेना युक्ति युक्त होगा।''

3.3.2 भाषाविज्ञान की परिभाषा

भाषाविज्ञान के अधिकांश विद्वानों द्वारा दी गई भाषाविज्ञान की परिभाषाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है। भाषाविज्ञान एक विज्ञान है और इसमें भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन होता है, इससे सभी विद्वान सहमत हैं। **डॉ देवीशंकर द्विवेदी** के शब्दों में– 'भाषा की प्रकृति, उसके गठन तथा व्यवहार आदि की वस्तुनिष्ठ परीक्षा करने वाले विज्ञान का नाम 'भाषिकी' है।' **भोलानाथ तिवारी** के अनुसार 'भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा अथवा भाषाओं का एककालिक, बहुकालिक, तुलनात्मक, व्यतिरेकी अथवा अनुप्रायोगिक अध्ययन–विश्लेषण तथा तद्विषयक सिद्धांतों का निर्धारण किया जाता है।' **डॉ. श्यामसुन्दरदास** के अनुसार–''भाषा–विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट, उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।'' **डॉ. पी.डी. गुणे** के शब्दों में–''भाषाओं का विशिष्ट अध्ययन (विज्ञान) है। भाषा–विज्ञान विभिन्न वर्गों की भाषाओं की वर्गीय समानता तथा असमानता का अध्ययन प्रस्तुत करता है।'' **डॉ. उदयनारायण तिवारी** का कहना है कि, ''भाषा–विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषा मात्र के भिन्न–भिन्न अंगों का विवेचन, अध्ययन और अनुशीलन करना सीखते हैं।'' **डॉ मंगलदेव शास्त्री** के अनुसार–'भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को ही भाषा–विज्ञान कहते हैं। वैज्ञानिक अध्ययन से हमारा तात्पर्य सम्यक् रूप से भाषा के बाहरी और भीतरी रूप एवं विकास आदि के अध्ययन से है।' **आर॰एच॰ रॉबिन्स** के अनुसार ''भाषा–विज्ञान को भाषा के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।'' 'General linguistic may be defined as the science of language.' **मैक्समूलर** के अनुसार, ''भाषा–विज्ञान, जिसको फिलालॉजी कहना ही सही है, भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन है।''

रॉविन्स का कहना है कि, ''समस्त देशों और कालों की मानवीय भाषा के सभी रूपों–प्रयोगों का वैज्ञानिक अध्ययन भाषा–विज्ञान कहलाता है।''

हॉल के अनुसार–''भाषा की प्रकृति और क्रियाशीलता को समझाने वाला विज्ञान भाषा–विज्ञान है।''

मेरिओपेइ के मतानुसार, ''भाषा–विज्ञान भाषा और भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं में कहीं भाषाओं के गठन और प्रकृति के अध्ययन की बात है, कहीं भाषा के विकास के अध्ययन की और कहीं काल विशेष से संबंधित भाषाओं के अध्ययन की बात है। चाहे भाषा के अध्ययन की विधि की बात हो, चाहे प्रकार की, चाहे विभिन्न भाषाओं की तुलना हो या प्रयोग की बात हो, अध्ययन तो भाषा से ही संबंधित है। इसलिए संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाषाविज्ञान एक ऐसा विषय है जिसमें भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन होता है।

3.3.3 भाषाविज्ञान का क्षेत्र

भाषाविज्ञान का संबंध किसी भाषा विशेष से नहीं है। संसार की सभी भाषाएँ और बोलियाँ इसके अध्ययन क्षेत्र में आती हैं। काल–विस्तार की दृष्टि से अगर किसी छोटे काल–खंड की भाषा का अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाता है, तो यह सांकालिक भाषा विज्ञान के अंतर्गत आता है। अगर अपेक्षाकृत विस्तृत काल–खंड की भाषा का अध्ययन होता है तो यह कालक्रमिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है। सांकालिक भाषा–विज्ञान को वर्णनात्मक भाषाविज्ञान और कालक्रमिक भाषाविज्ञान को ऐतिहासिक भाषाविज्ञान भी कहा जाता है।

देश–विस्तार से अगर भाषाओं की संख्या एक से अधिक हो और उनका अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से हो तो यह तुलनात्मक भाषाविज्ञान से संबंध रखता है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान सांकालिक या कालक्रमिक हो सकता है। सांकालिक अध्ययन में यदि प्रत्येक भाषा के मिलते–जुलते लक्षणों के वर्ग बनाकर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो इस प्रकार का अध्ययन प्रकार विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

बोली विज्ञान भी भाषाविज्ञान के क्षेत्र का अंग है। बोली विज्ञान में बोलियों का वर्णन, बोलियों के प्रसार क्षेत्र का निर्धारण और बोलियों के प्रयोग की खोज की जाती है। बोलियों के भौगोलिक वितरण को बोली भूगोल के अन्तर्गत रखा जाता है।

भाषा की पाँच उपव्यवस्थाएँ भी भाषाविज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र हैं।

1. **स्वानिकी–** स्वानिकी में ध्वनियों के भौतिक शरीर की परीक्षा की जाती है। इसकी तीन शाखाएँ हैं– (क) औच्चारिकी – इसमें मानव–शरीर में स्थित फेफड़ों से बाहर आने वाली हवा किस स्थान पर किस तरह प्रभावित हो कर ध्वनि उत्पन्न करती है, इसका अध्ययन किया जाता है। (ख) सांचारिकी–मुख से निकली हुई ध्वनि वायुमंडल में ध्वनि–तरंगों का रूप ले लेती है। ये तरंगें संचरण करती हुई श्रोता की ओर बढ़ती हैं। इन ध्वनि–तरंगों का यन्त्रों की सहायता से अध्ययन सांचारिकी में होता है। (ग) श्रोतिकी–ध्वनि तरंगों को श्रोता के कान विशेष श्रवण–प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करते हैं। यह सारी प्रक्रिया कैसे होती है इसका अध्ययन श्रौतिकी में किया जाता है।
2. **स्वानिमी** – इसमें किसी भाषा की कौन–सी ध्वनियाँ स्वनिम हैं, इसका निर्धारण किया जाता है।

3. **व्याकरण** – व्याकरण के दो अंग हैं– मर्षविज्ञान और वाक्यविज्ञान। मर्ष–विज्ञान में शब्दों के गठन का विवेचन किया जाता है। वाक्य–विज्ञान में वाक्यों–वाक्यांशों के संघटक तत्त्वों का विवेचन होता है।

4. **मर्षस्वानिमी** – यह व्याकरणिक तथा स्वानिमिक व्यवस्थाओं को जोड़ने वाली कड़ी है, जो मर्षिमों की स्वानिमिक आकृति से संबंध रखती है।

5. **सीमान्तिकी** – यह व्यवस्था एक ओर व्याकरण को छूती है क्योंकि व्याकरण अर्थवान इकाइयों से संबंध रखता है और दूसरी ओर वह सांसारिक परिस्थितियों तथा वस्तुओं को छूती है, जिन्हें हम सामान्यतः अर्थ कह कर पुकारते हैं।

6. व्याकरणिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही कोशविज्ञान आता है। इसमें कोश–निर्माण के संबंध में वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त होती है।

   शब्दों के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन व्युत्पत्तिशास्त्र में होता है। इसमें शब्दों की तत्सम, तद्भव आदि कोटियाँ बनाई जाती हैं।

शैली–विज्ञान भाषा–विज्ञान के गौण अंगों के अन्तर्गत आता है। इसमें एक ही भाषा में लिखने वाले कवियों, लेखकों की शैलीगत विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। प्रोक्तिविज्ञान (Discourse) में आपस में सुसंबद्ध वाक्यों का अध्ययन–विश्लेषण किया जाता है। समाज भाषा–विज्ञान भाषावैज्ञानिक अध्ययन का वह क्षेत्र है जो भाषा और समाज के बीच पाए जाने वाले हर प्रकार के संबंधों का अध्ययन–विश्लेषण करता है। लिपिविज्ञान को कुछ विद्वान भाषाविज्ञान का ही अंग मानते हैं। इसमें लिपि की उत्पत्ति, विकास और उसकी उपयोगिता पर विचार करते हैं। मनोभाषा विज्ञान में भाषा और विचार के सम्बंध, भाषा का मानसपटल पर प्रभाव, भाषा और अनुभूति आदि पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

3.4 निष्कर्ष

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाषा–विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र विस्तृत हैं। इसमें भाषा विषयक सभी दृष्टिकोणों से भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

3.5 कठिन शब्द

1. निरुक्त
2. प्रतिशाख्य
3. निर्वचनशास्त्र
4. भाषालोचन
5. सांकालिक

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 भाषा विज्ञान के नामकरण पर टिप्पणी कीजिए।

उ. ——————————————————————————————

——————————————————————————————

——————————————————————————————

——————————————————————————————

प्रश्न 2 विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई भाषा विज्ञान की परिभाषाओं पर चर्चा करें।

उ. ——————————————————————————————

——————————————————————————————

——————————————————————————————

——————————————————————————————

प्रश्न 3 भाषा–विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र स्पष्ट करें।

उ. ——————————————————————————————

——————————————————————————————

——————————————————————————————

——————————————————————————————

प्रश्न 4 भाषा–विज्ञान को परिभाषित करते हुए इसके क्षेत्र पर चर्चा करें।

उ. ——————————————————————————————

——————————————————————————————

——————————————————————————————

——————————————————————————————

3.7 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

————

भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं–वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं

4.4 कठिन शब्द

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप भाषा–विज्ञान के अध्ययन की प्रमुख पद्धतियों से अवगत होंगे।

4.2 प्रस्तावना

प्रत्येक विषय का अध्ययन कुछ विशेष पद्धतियों के माध्यम से सम्भव होता है। इन पद्धतियों एवं दिशाओं के आधार पर भेद या प्रकार को भी स्पष्ट किया जाता है। अतः इनके माध्यम से हम मूल विषय को भली–भाँति समझ व समझा सकते हैं।

4.3 भाषा–विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं–वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक

प्रत्येक विषय का अध्ययन विशेष पद्धतियों द्वारा सम्पन्न होता है। इन्हीं को विधि और रीति भी कहते हैं। भाषा–विज्ञान भाषा का वस्तुनिष्ठ एवं व्यवस्थित अध्ययन करता है। तथ्य–निष्पादन हेतु स्वाभाविक है कि किसी भाषा की संरचना या गठन एवं प्रकृति का पूर्ण विवेचन, विश्लेषण एवं परिक्षण विविध कोणों से किया जाए। ऐसा करने में ही इन पद्धतियों का विकास हुआ है। इन्हीं पद्धति या प्रणालियों के आधार पर भाषा–विज्ञान के विभिन्न प्रकारों या पक्षों का निर्धारण किया जाता है। मुख्य रूप से भाषा विज्ञान का अध्ययन तीन दिशाओं में होता है– 1. वर्णनात्मक अथवा संकालिक 2. ऐतिहासिक अथवा कालक्रमिक 3. तुलनात्मक।

1. **वर्णनात्मक भाषा विज्ञान–** अपेक्षाकृत किसी छोटे काल–खंड की भाषा का अध्ययन एवं विश्लेषण करके कुछ नियमों का निर्धारण वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान के अन्तर्गत आता है। इसमें इसके नाम के अनुसार ही किसी

भाषा के स्वरूप का वर्णन या विश्लेषण होता है। इस भाषा–विज्ञान को व्याकरण भी कहते हैं। सस्यूर ने वर्णनात्मक भाषाविज्ञान को स्थित्यात्मक कहा है और इसका उदाहरण पाणिनी का व्याकरण है। भाषा के उच्चरित रूप को लेकर स्वानिकी, स्वानिमी, और व्याकरण की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में वर्णनात्मक प्रणाली का रूप प्रमुख हो गया है; इसलिए वह स्वतंत्र विज्ञान के रूप में ग्रहण किया जाने लगा है। इस प्रणाली के अनुगामी भाषाविज्ञान के अध्ययन में किसी दूसरे शास्त्र की सहायता लेना पसन्द नहीं करते। यहाँ तक कि सीमान्तिकी को भी उन्होंने अपने अध्ययन की सीमा से बाहर रखा है।

भाषा के दो पक्ष हैं–ध्वनन और श्रवण। भाषा के अध्ययन की पूर्णता के लिए श्रवण भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना ध्वनन।

श्रवण का संबंध भाषा के अर्थ–पक्ष से है। अर्थ–पक्ष का अध्ययन सीमान्तिकी के अन्तर्गत होता है। अगर बातचीत में अर्थबोध ही न हो तो ध्वनि की उपयोगिता कुछ भी नहीं रह जाती। इसलिए सीमान्तिकी के अध्ययन के बिना वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान अधूरा है।

2. **ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान–** अपेक्षाकृत विस्तृत काल–खंड की किसी एक भाषा के स्वरूप का अध्ययन ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान में होता है। इसमें किसी भाषा के पुराने रूपों से नए रूपों का विकास दिखाया जाता है। सस्यूर ने ऐतिहासिक प्रणाली को गत्यात्मक या विकासात्मक प्रणाली कहा है।

   भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन में वर्णनात्मक अध्ययन अनायास आ जाता है, क्योंकि विकास दिखाते समय भी काल–विशेष की स्थिति को दिखाना आवश्यक होता है। भाषा में निरन्तर परिवर्तन आता रहता है, किन्तु वह परिवर्तन इतना सूक्ष्म होता है कि उसे ग्रहण करना असम्भव होता है। कालान्तर में जब परिवर्तन की मात्रा बढ़ जाती है और उसे अनुभव किया जाने लगता है, तब उसके विकास के भिन्न सोपानों का अध्ययन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

3. **तुलनात्मक भाषाविज्ञान–** भाषाविज्ञान की इस प्रणाली में वर्णनात्मक या ऐतिहासिक प्रणाली का समन्वय हो जाता है। तुलना के लिए एक से अधिक भाषाओं का अध्ययन किया जाता है। अध्ययन में अगर किसी काल–विशेष के स्वरूपों को लिया जाता है, तो वर्णनात्मक प्रणाली इसके अन्तर्गत आ जाती है। अगर अध्ययन में भिन्न कालों के स्वरूपों को आधार बनाया जाए तो ऐतिहासिक प्रणाली इसके अन्तर्गत आ जाती है। वस्तुतः भाषाविज्ञान का जन्म ही तुलनात्मक प्रणाली से हुआ। अठारहवीं शताब्दी में संस्कृत, ग्रीक और लैटिन का तुलनात्मक अध्ययन विलियम जोन्स ने किया, उससे यह बात सिद्ध हुई कि ये तीनों भाषाएँ एक परिवार की हैं। भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त समानताएँ ही हैं। तुलना में असमान या विरोधी बातें भाषाविज्ञान में विशेष उपयोगी नहीं मानी जाती। अगर असमानताओं का प्रतिशत अधिक हो तो मान लिया जाता है कि संबद्ध भाषाएँ एक परिवार की नहीं हैं।

अनुवाद और भाषा शिक्षण में तुलनात्मक प्रणाली महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। एक भाषा बोलने वाला जब दूसरी भाषा सीखता है, तो दोनों भाषाओं की असमानताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जिससे भाषा सीखने में उत्पन्न हुई कठिनाई दूर हो जाती है। इसी तरह अनुवाद करते समय भी दो भाषाओं के बीच पाई जाने वाली असमानताएँ ही कठिनाई उत्पन्न करती हैं। बीसवीं शती के दूसरे चरण में जब असमानताओं की उपयोगिता का पता चला तब तुलनात्मक भाषा–विज्ञान को 'व्यतिरेकी भाषा–विज्ञान' का (Contrastive Linguistics) नाम दिया गया था।

4.4 कठिन शब्द

1. पद्धति
2. वस्तुनिष्ठ
3. निष्पादन
4. परिक्षण
5. स्थित्यात्मक
6. अनुगामी
7. सीमान्तिकी
8. गत्यात्मक
9. व्यतिरेकी
10. प्रणाली

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 भाषा–विज्ञान के अध्ययन की दिशाओं पर चर्चा करें।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 2 भाषा–विज्ञान के अध्ययन की मुख्य पद्धतियों पर विचार करें।

उ. ____

____

____

____

4.6 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

समाज भाषा–विज्ञान का परिचय तथा समाज भाषा–विज्ञान और वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान में अन्तर

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्‌देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 समाज भाषा–विज्ञान का परिचय

5.4 समाज भाषा–विज्ञान और वर्णनात्मक भाषा विज्ञान में अन्तर

5.5 समाज भाषा–विज्ञान और भाषा के समाज शास्त्र में अन्तर

5.6 कठिन शब्द

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.8 पठनीय पुस्तकें

5.1 उद्‌देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप समाज भाषा–विज्ञान से परिचित होंगे।

– समाज भाषा विज्ञान और वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान में जो अन्तर है, उससे अवगत होंगे।

– समाज भाषा विज्ञान तथा भाषा के समाजशास्त्र में परस्पर जो अन्तर है, उसे समझ सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

समाज भाषा–विज्ञान (Socio-Linguisties) समाज और भाषा के संबंध तथा समाज के विविध स्तरों द्वारा प्रयुक्त भाषा की ध्वनि रूप, शब्द, वाक्य–रचना तथा अर्थ आदि विषयक–विशेषताओं का अध्ययन है।

5.3 समाज भाषा–विज्ञान का परिचय

समाज भाषा–विज्ञान को समाज के सन्दर्भ में भाषा के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जाता है। समाज के किसी एक या सभी पक्षों का भाषा के प्रयोग के तरीकों पर प्रभाव का अध्ययन करने वाले शास्त्र को समाज भाषा–विज्ञान कहा जाता है। यह शास्त्र कुछ–कुछ आनुभविक (Emperical) और कुछ–कुछ सैद्धांतिक है। इस क्षेत्र में कार्य करते समय क्षेत्र में जाकर तथ्य एकत्रित किए जाते हैं और अपने अनुभवों के बारे में सोचा भी जाता है। यह अलग बात है कि शोधकर्ता के अपने अनुभवों का क्षेत्र सीमित है और उस पर निर्भर रहने से पूर्ण तथ्य सामने नहीं आते।

भाषा–विभिन्नता का अध्ययन इस शास्त्र की मूल कुंजी है। इसके अनुसार भाषा एक चर (Variable) है और वह बदलती रहती है। भाषा की प्रकृति समरूपी न होकर विषमरूपी (Heterogeneous) है। भाषा की व्यवस्था समाज के अनुरूप होती है और उसका विकास सामाजिक विकास के समानान्तर चलता है।

समाज भाषा–विज्ञान के अध्ययन में वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और नृविज्ञान की सहायता ली जाती है। वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान के विभिन्न अंगों – स्वानिकी, स्वानिमी, अर्थ विज्ञान, वाक्य विज्ञान, मर्ष विज्ञान, शब्दावली (शब्दविज्ञान) के आधार पर विभिन्न समूहों की भाषा विभिन्नता का अध्ययन किया जाता है। भाषा विभिन्नता का अध्ययन विभिन्न सामाजिक चरों (Variables) – धर्म, पद, लिंग, आयु, वर्ग, जाति, शिक्षा, सजातीयता को भी आधार बनाया जाता है।

विश्व को अगर एक बड़ा समाज मान लिया जाए तो हम पाएंगे कि एक भाषा बोलने वाले समूह की शब्दावली अन्य भाषा बोलने वाले समूह से अलग होती है। हिन्दी में चाचा, ताऊ, मामा, मौसा जैसे संबंध बताने वाले शब्दों का यूरोपीय भाषाओं में अभाव है।

समाज के सन्दर्भ में भाषा का अध्ययन करते समय हमारे सामने कुछ ऐसे तथ्य सामने आते हैं जिनकी ओर पहले हमारा ध्यान गया ही नहीं होता या हम उन्हें अनदेखा कर गए होते हैं। एक ही समूह के अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा एक ही शब्द अलग तरह से उच्चरित होता है या व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा के शब्दों का उच्चारण अन्य भाषा बोलने वाले समूह के व्यक्तियों द्वारा अलग–अलग होता है। जैसे साईंस, सड़क, भला, सेहत, शाम, वन्दना आदि कितने ही शब्दों का उच्चारण ब्रज या अवधी भाषी, डोगरी भाषी, कश्मीरी भाषी, लद्दाखी भाषी, भद्रवाही भाषा द्वारा अलग–अलग होता है।

यह भी देखा गया है कि एक भाषा बोलने वाला व्यक्ति जब किसी दूसरी भाषा बोलने वाले व्यक्ति से बात करता है तो कुछ शब्द अपनी मातृभाषा के, कुछ सामने वाले की मातृभाषा के और कुछ ऐसी भाषा के प्रयोग करता है जिसे दोनों समान रूप से समझते हों। जैसे यह संभव है कि कम पढ़ा लिखा पंजाबी भाषी हिन्दी भाषी से बात करे तो हिन्दी, पंजाबी शब्दों के अतिरिक्त कुछ अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी कर जाए। ऐसा इस बात पर भी निर्भर है कि सामने वाला व्यक्ति प्रभावशाली है या नहीं। अगर प्रभावशाली है तो उसकी भाषा में बातचीत को अधिमान दिया जाएगा, ऐसी स्थिति में शब्दावली और व्याकरण किसी एक भाषा के अनुरूप नहीं रहेगा। एक मातृभाषी

दुकानदार के सामने जब अन्य मातृभाषी ग्राहक खड़ा होता है तो वह यथासंभव उसकी भाषा में बोलने का प्रयत्न करता है जिससे समाज भाषा–विज्ञान के अध्ययन की सामग्री तो प्राप्त होती ही है, हमारा मनोरंजन भी होता है।

समाज भाषा–विज्ञान में दूसरी भाषाओं से उधार लिए गए शब्दों का अध्ययन भी होता है। मातृभाषा, व्याकरण, बहुभाषिकता, भाषा और संस्कृति के संबंध में उपस्थित समस्याओं का अध्ययन भी यह शास्त्र करता है। ब्राजील और कोलंबिया के कुछ क्षेत्रों के आदिवासी अलग–अलग भाषा बोलने वाले समूहों में बंटे हुए हैं। वहां की सामान्य भाषा टुकानो है जिसका प्रयोग वहां के निवासी बाहर के व्यक्तियों से व्यवसाय करने के लिए करते हैं। वहां के समूहों में यह नियम है कि समूह के युवक/युवती का विवाह किसी दूसरे समूह में ही किया जा सकता है और मां अपने बच्चों के साथ बच्चों के पिता की भाषा में ही बातचीत करेगी। इस प्रकार वहां के बच्चों की मातृभाषा नहीं होती। एक बड़े परिवार में अगर अलग–अलग समूहों की औरतें हैं, तो ऐसी स्थिति में परिवार की कोई सामान्य भाषा नहीं है। सभी औरतें आपसी बातचीत में अपने समूह की भाषा प्रयोग करने में स्वतंत्र हैं। ऐसा होने पर भी पिता की भाषा में परिवर्तन के तथ्य बहुत अधिक प्राप्त नहीं हुए जिससे यह परिणाम निकला कि प्रतिकूल परिस्थिति में भी भाषा का हस्तांतरण हो सकता है। इसका कारण यह है कि बड़े परिवार के अन्य सदस्यों से सम्पर्क के कारण वे और बच्चे देसी भाषा (Native Language) सीख जाते हैं। ऐसे समूहों में व्याकरण से जुड़ी समस्या यह है कि अगर कोई व्यक्ति किसी समूह की भाषा की व्याकरण की पुस्तक लिखना चाहे तो समूह के किन व्यक्तियों को सामने रख कर वह कार्य करे। दूसरी समस्या संप्रेषणीयता की है। किसी एक समूह में बाहर से आने वाला व्यक्ति किस भाषा का प्रयोग करे क्योंकि एक परिवार में ही बहुत–सी भाषाएँ बोली जाती हैं। एक अन्य समस्या भाषाओं को सीखने को लेकर है। एक ही परिवार का व्यक्ति अन्य सदस्यों से बातचीत करने के लिए बूढ़ा होने तक भाषाएँ सीखता रहता है। आवश्यकता की दृष्टि से परिवार के प्रत्येक सदस्य से अपेक्षा की जाती है कि वह पिता की भाषा, माता की भाषा (ताकि मां के समूह में विवाह किया जा सके) और सामान्य भाषा टुकानो सीखे। यहां चौथी समस्या भाषा और संस्कृति के संबंध को लेकर है। सांस्कृतिक दृष्टि से प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे शब्द हाते हैं जिनके पर्यायवाची दूसरी भाषाओं में नहीं पाए जाते क्योंकि वे समूह विशेष की सांस्कृतिक संकल्पना को प्रकट करते हैं।

ब्राजील और कोलंबिया के उपर्युक्त संदर्भ में यह नहीं बताया जा सकता कि किस समूह की निश्चित रूप से कौन–सी भाषा है। समूहों के सामाजिक नियमों और सन्दर्भों के बिना किसी भी समूह की भाषा के बारे में निश्चित रूप से कोई चर्चा नहीं की जा सकती।

अगर विभिन्न सामाजिक चरों के सन्दर्भ में भाषा की विविधता पर ध्यान दें तो हम पाएँगे कि चरों के आधार पर एक व्यक्ति की भाषा दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है। अंग्रेजी में पढ़े–लिखे व्यक्ति, केवल संस्कृत जानने वाले व्यक्ति और अनपढ़ व्यक्ति की भाषा में अंतर होता है। विभिन्न जातियों, धर्मों, स्त्री–पुरुषों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा में भी अंतर होता है। वक्ता की भाषा सुनकर उसके सामाजिक स्तर का अनुमान भी लगाया जा सकता है। एक ही बात कहने के लिए विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के साथ अलग–अलग भाषा

और वाक्य विन्यास का प्रयोग देखा जा सकता है। किया–करा, आना–आइयो, उन्होंने–उन्ने, मुझको–मेरे को–मैंने, मुझ से आदि पर्यायवाची समाज में भाषा–प्रयोग के धरातल पर भिन्नता को सूचित करते हैं।

प्रयोजन के धरातल पर समाज भाषा–विज्ञानी सामाजिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करके यह निर्धारित करता है कि व्यवसाय के क्षेत्र में किस प्रकार की भाषा का प्रयोग उचित नहीं समझा जाता। समाजभाषाविज्ञान की निम्नलिखित मूल संकल्पनाएँ हैं जिन पर समाज भाषावैज्ञानिक जांच–पड़ताल निर्भर करती है : 1. वाक्यसमूह (Speech community), 2. भाषा विविधता (Language Varieties), 3. बोली, 4. व्यक्ति बोली (Idiolect), 5. मानक भाषा और 6. भाषिक इकाइयां।

5.4 संरचनात्मक/वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान और समाज भाषा–विज्ञान में अंतर

संरचनावादियों और प्रसिद्ध भाषा–वैज्ञानिक नोम चॉमस्की के अनुसार वर्णनात्मक भाषा विज्ञान और समाज भाषा–विज्ञान में अंतर को भाषा की संरचना (Structure) के संदर्भ में देखा जा सकता है। ये भाषा–विज्ञानी भाषा को सामाजिक संदर्भ से अलग करके देखते हैं। इनके अनुसार भाषा–विज्ञान का कार्य भाषा विशेष के नियमों की खोज करना है। इस खोज के पश्चात ही समाज भाषा–विज्ञान का कार्य आरंभ होता है, जो यह देखता है कि भाषा विशेष के लिए निर्धारित नियमों का समाज के साथ क्या संबंध है। जैसे विभिन्न समूहों या व्यक्तियों द्वारा एक भाव या विचार व्यक्त करने के लिए कौन से अलग–अलग तरीके हैं।

वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान और समाज भाषा–विज्ञान में अंतर केवल इतना नहीं है कि वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान द्वारा की गई स्वानिकी, स्वानिमी, मर्षविज्ञान, वाक्यविज्ञान और सीमान्तिकी के नियमों की खोज का प्रयोग समाज भाषा–विज्ञान करता है। समाज और भाषा के सम्बन्धों के सन्दर्भ में की गई खोज के निष्कर्ष वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान के लिए भी प्रासंगिक होते हैं। अर्थ के क्षेत्र में यह पाया गया है कि जिस अर्थ को कुछ भाषाएँ व्यक्त कर सकती हैं उस अर्थ को अन्य भाषाएँ व्यक्त नहीं कर सकतीं। यह कठिनाई अनुवाद करते हुए उस समय उपस्थित होती है जब अनुवाद से संबंधित भाषाएँ विभिन्न संस्कृतियों से जुड़ी हुई हों और उनके पास विभिन्न प्रथाओं, वस्तुओं, संस्थाओं आदि के नाम हों। उदाहरण के रूप में पंजाबी शब्द 'बुक्कल' का हिन्दी में और हिन्दी शब्द 'योग' का अंग्रेजी में अनुवाद नहीं किया जा सकता। कुछ भाषाओं में समस्या शब्दार्थ के साथ जुड़े हुए अन्य घटकों की भी है। जैसे अंग्रेजी शब्द 'ईट' (Eat) का जर्मनी में अनुवाद दो विभिन्न तरीकों से किया जाएगा। जर्मनी में यह देखा जाएगा कि खाने वाले मनुष्य है या पशु। मनुष्य और पशु की संकल्पना तो अंग्रेजी में भी है लेकिन मनुष्य, पशु और खाने के संयोजन की अलग–अलग व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार के उदाहरणों से एक संभावना यह उत्पन्न होती है कि एक ऐसे शब्द कोश का निर्माण किया जाए जिसमें विश्व की सभी भाषाओं के शब्द अपने घटकों और सामाजिक संदर्भों सहित अर्थ को व्यक्त करें।

व्याकरण के क्षेत्र में एक ही भाषा की विविधता के भीतर एक बात कहने के लिए वाक्य की संरचना अलग–अलग है। मुख्य भूभाग की अंग्रेजी में have+Past Participle संरचना के स्थान पर आइरिश अंग्रेजी में be after का प्रयोग किया जाता है। जैसे I have just seen him के स्थान पर I am after seeing him.

यूरो–अजटेक की भाषा कोरा में u– और a– प्रत्ययों का प्रयोग 'भीतर' और 'बाहर' के अर्थ में होता है। 'भीतर' और 'बाहर' अर्थ सटीक न होकर निकटता को प्रकट करते हैं। यह कहने के लिए कि 'कुत्ते की दुम काट कर छोटी कर दी गई है' कभी u– और कभी a– प्रत्यय जुड़ने से बने वाक्यों में अंतर यह है कि एक स्थिति में कुत्ते को पीछे से देखा गया है और दूसरी स्थिति में एक तरफ से। इसका कारण वहां के लोगों की चाक्षुष ज्योमिति में छिपा है। जब ऊँचाई की ओर दृष्टि एक लाइन में होती है तब वे u– का प्रयोग करते हैं। जब लाइन से बाहर होती है तब a– का प्रयोग किया जाता है।

वक्ता, श्रोता और जिसके बारे में बात की जा रही है उनके बीच के सामाजिक संबंधों में सामर्थ्य और एकात्मकता (Power and Solidarity) व्यक्त होती है। एकात्मकता से अभिप्राय लोगों के संबंधों के बीच की दूरी से है – वे कितने अनुभव, कितनी सामाजिक विशेषताएँ (धर्म, लिंग, आयु, क्षेत्र, जाति, व्यवसाय, हित आदि), कितनी अन्तरंगता आदि साझा करते हैं। व्याकरण के केन्द्र में सामर्थ्य – एकात्मकता संबंध होते हैं। इन्हें अंग्रेजी के संबोधकों (Vocatives) में देखा जा सकता है। जॉन ब्राउन नाम का व्यक्ति अगर अंतरंग है तो कहेंगे हैलो जॉन अगर दूर का प्रभावी व्यक्ति है तो कहेंगे हैलो मिस्टर ब्राऊन। नामों के अतिरिक्त यह प्रवृत्ति सर्वनामों के उपयोग में भी देखी जा सकती है। अगर कोई व्यक्ति अंतरंग है तो उसके लिए हम कह सकते हैं – तुम इधर बैठो। अगर व्यक्ति दूर का और प्रभावशाली है तो कहेंगे – आप इधर बैठिए। वक्ता अपने लिए 'मैं' या 'हम' का प्रयोग करता है। अगर वह किसी प्रभावशाली व्यक्ति के सामने खड़ा है तो वह अपने लिए अन्य पर्यायवाची उपयोग करेगा, जैसे – दास, खादिम आदि। कुछ भाषाओं में क्रिया कुछ अन्य सूचनाएँ भी देती है, जैसे काल, प्रश्न, आज्ञा और निषेध की। इटैलियन में क्रिया केवल यह नहीं बताती कि वाक्य आज्ञार्थक है या नहीं, वह यह भी बताती है कि जिसे संबोधित किया गया है वह अंतरंग है या नहीं। बास्क भाषा में क्रिया श्रोता के साथ सामाजिक संबंध के अतिरिक्त उसका लिंग भी बताती है। जापानी में 'डा' नपुंसक लिंग है। पुरुष के साथ बातचीत में इसका रूप होगा 'डुक' और स्त्री के साथ बातचीत में 'डुन'।

स्पष्ट है कि एक बात कहने के लिए भाषाओं की संरचना में सदैव एकरूपता नहीं होती। सामाजिक सम्बन्ध बदलने पर संरचना भी बदल जाती है।

वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान में भाषिक क्षमता की बात एक भाषा बोलने वाले पूरे समूह को सामने रख कर की जाती है, न कि समाज भाषा–विज्ञान की तरह समूह विशेष या एक व्यक्ति को सामने रख कर। अगर हम **'Sidewalk'** शब्द पर विचार करें तो पाएँगे कि अधिकांश अंग्रेजी बोलने वाले इस शब्द के बारे में चार तथ्य जानते हैं – 1. इसका उच्चारण 'साइडवाक' है। 2. यह ब्रिटिश शब्द Pavement का पर्यायवाची है जिसका अर्थ है सड़क के किनारे चलने के लिए बना ऊँचा रास्ता। 3. यह जातिवाचक संज्ञा है और 4. इसका प्रयोग अमेरिकन करते हैं, ब्रिटिश नहीं। इस संदर्भ में एक अमेरिकन की भाषिक क्षमता में एक अर्थ के लिए **'Sidewalk'** शब्द होगा जबकि एक आम ब्रिटिश की भाषिक क्षमता में Pavement शब्द होगा। समाज भाषा–विज्ञान भाषिक क्षमता के सन्दर्भ में एक समूह या एक व्यक्ति की भाषिक क्षमता को भी अध्ययन का विषय बनाता है।

वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान भाषा–वैज्ञानिक इकाइयों से जुड़े तथ्यों पर ध्यान केंद्रित नहीं करता। वह भाषा का प्रयोग करने वाले विशिष्ट वक्ता, श्रोता और परिस्थिति पर विचार नहीं करता जबकि समाज भाषा–विज्ञान ऐसा करता है।

समाज भाषा–विज्ञान का क्षेत्र वृहत है, जबकि वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान का क्षेत्र सीमित है।

5.5 भाषा के समाज शास्त्र और समाज भाषा–विज्ञान में अंतर

फिशमैन के अनुसार भाषा का समाज शास्त्र ऐसा शास्त्र है जिसमें समाज पर भाषा के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। यह शास्त्र समाज भाषा–विज्ञान से संबंधित है जो कि भाषा पर समाज के प्रभाव का अध्ययन करता है। भाषा का समाजशास्त्र समाज का अध्ययन भाषा के सम्बन्ध में करता है जबकि समाज भाषा–विज्ञान भाषा का अध्ययन समाज के संबंध में करता है। समाज भाषा–विज्ञान अपना अध्ययन भाषा पर केन्द्रित करता है जबकि भाषा के समाजशास्त्र के अध्ययन का केन्द्र समाज होता है। भाषा के समाजशास्त्र और समाज भाषा–विज्ञान में अंतर इस बात को लेकर है कि शोधार्थी समाज को अधिक महत्व देता है या भाषा को और उसकी क्षमता भाषा वैज्ञानिक संरचना के विश्लेषण की है या सामाजिक संरचना के विश्लेषण की है। बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहां दोनों एक दूसरे को अधिव्याप्त (Overlap) करते हैं। अभी तक जितना कार्य हुआ है उसे देख कर इन दोनों के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना कठिन है।

भाषा का समाज शास्त्र यह समझने की चेष्टा करता है कि किस प्रकार व्यक्ति या समूह के भाषा प्रयोग द्वारा सामाजिक गत्यात्मकता प्रभावित होती है। इसका संबंध इससे है कि कौन किन परिस्थितियों में किसके साथ किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है। किस प्रकार व्यक्ति या समूह की पहचान उस भाषा द्वारा स्थापित होती है जिसका वह प्रयोग कर रहा है।

भाषा का समाजशास्त्र भाषा और समाज के बीच सम्बन्धों का अध्ययन है। इसके अध्ययन का केन्द्र भाषा के व्यवहार का सामाजिक संस्थान है जिसमें न केवल भाषा का प्रयोग शामिल है बल्कि भाषा का व्यवहार और भाषाओं के प्रति व्यवहार और भाषा का प्रयोग करने वालों के प्रति व्यवहार भी शामिल है।

इस क्षेत्र का आरंभ यह मानने से होता है कि भाषा एक सामाजिक मूल्य है। इसमें सामाजिक समूहों की परस्पर सम्पर्क की भाषा पर खोज का कार्य होता है। विशेष रूप से बहुभाषिकता और भाषा असहमति (विरोध, संघर्ष)। फिशमैन के अनुसार अध्ययन के दो स्तर हैं – भाषा का वर्णनात्मक समाज शास्त्र जिसमें यह बताया जाता है कि कौन किससे कब किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है और भाषा की सामाजिक गत्यात्मकता – जिसमें अलग–अलग समूहों में भाषा परिवर्तन की अलग–अलग गति की व्याख्या की जाती है।

भाषा के समाजशास्त्र के अन्तर्गत अब तक जो अध्ययन हुआ है उसके निम्नलिखित क्षेत्र हैं : भाषा सम्पर्क और फैलाव, सामाजिक बहुभाषिकता, भाषा नीति और योजना, भाषा व्यवहार, शिक्षा में भाषा नीति, भाषा अनुरक्षण और भाषा परिवर्तन और डाइग्लोसिया (Diglosia)।

5.6 कठिन शब्द

1. आनुभविक
2. कुंजी
3. विषमरूपी
4. नृविज्ञान
5. हस्तांतरण
6. संरचना
7. घटक
8. संयोजन
9. चाक्षुष
10. निषेध

5.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 समाज भाषा–विज्ञान पर टिप्पणी लिखें।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 2 समाज भाषा–विज्ञान और वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 3 समाज भाषा–विज्ञान और भाषा के समाजशास्त्र का अन्तर स्पष्ट करें।

उ. ____

____

____

____

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

____

स्वन, स्वानिकी, स्वर और व्यंजन : परिभाषाएँ

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्‌देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 स्वन, स्वानिकी, स्वर और व्यंजन परिभाषाएँ

6.3.1 स्वन (ध्वनि) की परिभाषा

6.3.2 स्वानिकी (ध्वनि–विज्ञान) की परिभाषा

6.3.3 स्वर की परिभाषा

6.3.4 व्यंजन की परिभाषा

6.4 कठिन शब्द

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.6 पठनीय पुस्तकें

6.1 उद्‌देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप स्वन, स्वानिकी, स्वर तथा व्यंजन के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना

ध्वनि को स्वन भी कहा जाता है। यह भाषा की लघुतम और अनिवार्य ईकाई है। भाषा–विज्ञान में 'ध्वनि' का अर्थ केवल उन ध्वनियों से है–जिनका प्रयोग मनुष्य बोल–चाल में करता है और जिन्हें लिखित

रूप में प्रकट करने हेतु लिपि चिन्हों का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि–विज्ञान ध्वनियों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी देता है। ध्वनियों का उच्चारण और श्रवण होता है। दोनों के मध्य भाषा की गति होती है। इन्हीं तीनों आधारों पर ध्वनि–भेद किये जाते हैं। अभी तक इनके मुख्य भेद स्वर और व्यंजन हैं।

6.3 स्वन, स्वानिकी, स्वर और व्यंजन परिभाषाएँ

6.3.1 स्वन (ध्वनि) की परिभाषा :–

हम अपने आस–पास जिन ध्वनियों को सुनते हैं, उनकी उत्पति उत्पादक द्रव्य में कम्पन द्वारा होती है। प्रत्येक कंपन ध्वनि है। यह अलग बात है कि बहुत से कम्पन ऐसे होते है, जिन्हें हम सुन नहीं सकते। वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि वायुमंडलीय दबाव में परिवर्तन या उतार–चढ़ाव का नाम है। भाषाविज्ञान में ध्वनि को सामान्य ध्वनि से अलग करने के लिए उसे भाषा–ध्वनि (Speech sound) या वाक्स्वन भी कहा जाता है। 'स्वन' भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है, जिसका उच्चारण और श्रोतव्यता की दृष्टि से स्वतंत्र व्यक्तित्व हो। स्वनों का उत्पादन मनुष्य के वाग्यंत्र से होता है और कोई भी व्यक्ति जो सुनने में समर्थ है, सुन सकता है। ध्वनि एक प्रकार की शक्ति है जो दो वस्तुओं के टकराने से उत्पन्न होती है। दो वस्तुओं के टकराने से वायु में ध्वनि–लहरी या कंपन–लहरी (Sound wave) उत्पन्न होती है।

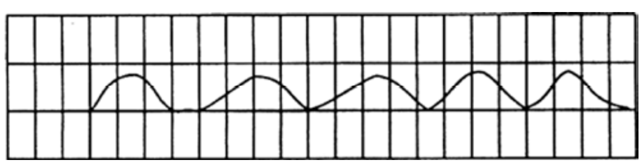

ध्वनि–लहरी (Sound wave)

मनुष्य जब भाषा को प्रयोग में लाता है, उस समय भी ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। ये ध्वनियाँ तब उत्पन्न होती हैं जब वाग्यंत्र (Larynx) का एक अवयव दूसरे अवयव के साथ स्पर्श करता है। मानव–मुख से भाषा बोलने के लिए जिन ध्वनियों को प्रयोग में लाया जाता है, उन्हें स्वन (Phone) कहते हैं। भाषा–विज्ञान के जिस अंग के अंतर्गत इन स्वनों का वैज्ञानिक अध्ययन–विश्लेषण किया जाता है, उसे स्वन–विज्ञान कहते हैं।

मानव–मुख से उच्चरित होने वाले ध्वनि–संकेत जिनका प्रयोग भाषा के संप्रेषण में होता है, उन्हें स्वन कहते हैं। इस परिभाषा के आधार पर स्वन के ये भेदक लक्षण निर्धारित किए जा सकते हैं :–

1. स्वनों का संबंध मानव–भाषा से है, मानवेतर भाषाओं से नहीं।
2. स्वनों का प्रयोग भाषा–संप्रेषण में होता है। जब स्वनों का व्यवस्थित प्रयोग किया जाता है, उनसे शब्द–प्रतीक बनते हैं। इन ध्वनि–प्रतीकों (शब्द–प्रतीकों) का व्यवस्थित प्रयोग भाषा है।

3. स्वन अर्थवान न होकर अर्थ–द्योतक होते हैं। इसका अर्थ यह है कि स्वतंत्र रूप से स्वन का कोई अर्थ नहीं होता किंतु व्यवस्थित प्रयोग से इनसे ध्वनि–प्रतीकों (शब्द–प्रतीकों) का निर्माण होता है।

4. छींकने या गला साफ करने से भी ध्वनि या ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं किंतु उन्हें स्वन नहीं कहते हैं।

5. प्रत्येक भाषा में स्वनों की संख्या निश्चित तथा सीमित होती है किंतु इन निश्चित स्वनों से अनिश्चित शब्द–प्रतीकों को निर्मित किया जा सकता है। मानव–मुख से उच्चरित होने वाले स्वनों को विभिन्न आधारों पर दो भागों में (Concept of Duality) विभाजित करने के निम्नलिखित कई विधान हैं :–

   1. बहिर्मुखी तथा अंतर्मुखी स्वन
   2. अल्पप्राण तथा महाप्राण
   3. घोष तथा अघोष
   4. अनुनासिक तथा निरनुनासिक।

1. बहिर्मुखी तथा अंतर्मुखी स्वन

बहिर्मुखी वे स्वन हैं जिनके उच्चारण में वायु का विमोचन अंदर से बाहर होता है। दूसरे शब्दों में, जिन स्वनों का उच्चारण करते समय पहले साँस अंदर लेनी पड़ती है तथा उसका विमोचन स्वन के उच्चारण के साथ होता है, उन्हें बहिर्मुखी स्वन (Explosive Phone) कहते हैं। हिंदी के सभी स्वर स्वन तथा व्यंजन स्वन बहिर्मुखी स्वन है।

अंतर्मुखी स्वन वे हैं जिनका उच्चारण करते समय वायु का विमोचन बाहर से अंदर होता है। यह प्रक्रिया बहिर्मुखी स्वनों के विपरीत है। अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी स्वनों की विपरीत दशाओं को हम निम्नलिखित चित्र से समझा सकते हैं :–

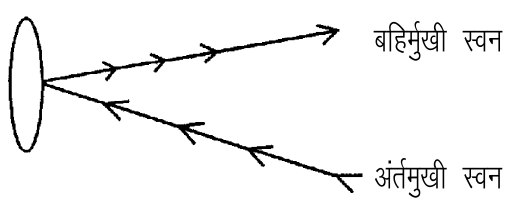

2. अल्पप्राण तथा महाप्राण स्वन

जिन स्वनों का उच्चारण करते समय वायु में 'हकार' की ध्वनि नहीं गूँजती, उन्हें अल्प–प्राण कहते हैं। अल्प–प्राण का संबंध प्रायः व्यंजनों से है। हिंदी के अल्पप्राण व्यंजनों के उदाहरण इस प्रकार हैं :–

क् ग् च् ज् ट् ड् त् द् आदि।

जिन स्वनों के उच्चारण में वायु में 'हकार' की ध्वनि गूँजती है, उन्हें महाप्राण कहते हैं। उदा॰ – ख् घ् छ् झ् ठ् ढ् आदि। अल्पप्राण तथा महाप्राण का संबंध व्यंजन स्वनों से है।

3. घोष तथा अघोष स्वन

जिन स्वनों का उच्चारण करते समय स्वर–तंत्रियों (vocal bands) में कंपकंपी उत्पन्न होती है, उन्हें घोष स्वन या झंकार उत्पन्न करने वाले स्वन कहते हैं। प्रायः स्वर स्वन घोष होते हैं। व्यंजन स्वन घोष (सघोष) तथा अघोष दोनों होते हैं।

इसके विपरीत अघोष वे स्वन हैं जिनका उच्चारण करते समय स्वरतंत्रियों में कंपकंपी उत्पन्न नहीं होती है अर्थात् स्वनों का उच्चारण करते समय स्वरतंत्रियाँ तटस्थ रहती हैं। हिंदी में घोष तथा अघोष दोनों प्रकार के व्यंजन पाए जाते हैं। हिंदी के कुछ अघोष व्यंजन इस प्रकार हैं :–

क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ् आदि

4. जिन स्वनों के उच्चारण में वायु का विमोचन मुख–विवर से होता है, उन्हें मौखिक स्वन (Oral phone) कहते हैं। हिंदी के सभी स्वर मौखिक हैं, जैसे, अ, आ, इ, ई, उ,, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। हिंदी के कई मौखिक व्यंजन इस प्रकार हैं :– क्, ख्, ग्, घ्, च्, छ्, ज्, झ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, त्, थ्, द्, ध् आदि।

इसके विपरीत जिन स्वनों का उच्चारण करते समय वायु का विमोचन मुख विवर के साथ–साथ नासिका विवर (Nasal Cavity) से भी होता है, उन्हें नासिक्य स्वर कहते हैं। हिंदी के स्वर चिह्नों में बिंदी (–ं) या चंद्रबिंदी (–ँ) लगाने से उनमें अनुनासिकता लाई जा सकती है। हिंदी में ये व्यंजन चिह्न नासिक्य व्यंजन हैं। ङ्, ञ् ण्, न्, म् आदि।

5. मानव–मुख से उच्चरित होने वाले स्वनों को वर्गीकृत करने का परंपरागत किंतु सशक्त तथा वैज्ञानिक आधार स्वरों तथा व्यंजनों में करने का है। स्वरों का उच्चारण करते समय वायु में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती। व्यंजनों का उच्चारण बाधा–सहित होता है। अब आगे स्वरों का विवेचन सविस्तार किया जाएगा।

6.3.2 स्वानिकी (ध्वनि–विज्ञान) की परिभाषा :–

स्वानिकी भाषा के अध्ययन का वह विभाग है जिसमें हम ध्वनियों के भौतिक शरीर की परीक्षा करते हैं। इसमें स्वनों के अर्थ का अध्ययन नहीं किया जाता।

फेफड़ों से बाहर आने वाली साँस को अनेक प्रकार के मार्गों से निकलना पड़ता है। बाहर निकलते हुए अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना भी करना पड़ता है। इस प्रकार बाधित हुई साँस ही ध्वनि का रूप ले लेती है। बोलते समय वाक्–अवयवों द्वारा साँस पर जो क्रिया की गई उसका विवेचन करते हुए ध्वनियों का वर्गीकरण और विश्लेषण किया जा सकता है। किसी ध्वनि का उच्चारण मुख के किस भाग से जिह्वा और ओठों की कितनी

तथा कैसी सक्रियता के साथ हो रहा है, इसका अध्ययन भी किया जाता है। यह सारा अध्ययन ध्वनि के उच्चारण–पक्ष से सम्बंधित है। यह अध्ययन स्वानिकी की जिस शाखा का निर्माण करता है, उसे औच्चारिकी कहते हैं।

मुख से निकला हुआ ध्वनि–श्वास वायुमंडल में ध्वनि–तरंगों का रूप ले लेता है। वायुमण्डल में संचरण करती हुई ये तरंगे सभी ओर फैलती हैं। इन ध्वनि–तरंगों का अध्ययन सांचारिकी नामक शाखा में किया जाता है। ये तरंगें अंततः श्रोता के कानों में पहुँचती हैं। कान सुनने की विशेष प्रक्रिया द्वारा इन तरंगों को ग्रहण करता है। इन तरंगों को ग्रहण कैसे किया जाता है, इसका अध्ययन श्रौतिकी नामक शाखा में होता है। स्वानिकी की इन तीन शाखाओं–औच्चारिकी, सांचारिकी और श्रौतिकी में ध्वनियों के भौतिक शरीर की ही परीक्षा होती है।

6.3.3 स्वर : परिभाषा

"स्वर उन स्वनों को कहते हैं जो मुख–विवर में किसी प्रकार अवरुद्ध हुए बिना उच्चरित होते हैं। फेफड़ों से आने वाली वायु ओष्ठ और उससे आगे तक कहीं अवरुद्ध नहीं होती। इसको कहीं बहुत संकीर्ण मार्ग से नहीं निकलना पड़ता है। स्वर साधारणतया घोष ध्वनि होती है।" – ब्लाख और ट्रेगर

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर स्वर की निम्नलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं :–

1. स्वरों के उच्चारण में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती।
2. इनके उच्चारण में ओष्ठ कभी गोल तथा कभी खुले रहते हैं।
3. स्वरोच्चारण में जीभ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। दूसरे शब्दों में यह करण (articulator) की भूमिका निभाती है।
4. स्वर साधारणतया घोष होते हैं।
5. स्वरों में मुखरता होती है। ये दूर तक सुनाई देते हैं। व्यंजन स्वन मुखरित नहीं होते। वे घोष तथा अघोष दोनों हो सकते हैं।

स्वन–सृजन प्रक्रिया

जो साँस हम लेते हैं, वही स्वनों के सृजन का कारण है। अधिकांश स्वन फेफड़ों से बाहर आती हुई वायु द्वारा उत्पन्न होते हैं। यह वायु सबसे पहले स्वर–यंत्र में से गुज़रती है। स्वर–यंत्र में दो लचीले पर्दे होते हैं, जिन्हें स्वरतंत्रियाँ कहते हैं। इनकी अलग–अलग स्थितियों के कारण ध्वनियों में भेद उत्पन्न होता है। कभी ये एक–दूसरे से अधिकतम दूरी पर होती हैं, यह स्थिति सामान्य रूप से साँस लेने की है। दूसरी स्थिति में ये साँस लेने की स्थिति की तुलना में एक–दूसरे के निकट होती हैं । इस स्थिति में उत्पन्न ध्वनियों को अघोष ध्वनियाँ कहा जाता है। तीसरी स्थिति में ये एक दूसरे के और भी निकट होती हैं और इनके बीच में से वायु घर्षण करती हुई निकल जाती है। घर्षण के कारण स्वरतंत्रियों में कम्पन होता है। इस स्थिति में उत्पन्न ध्वनियाँ

घोष कहलाती हैं। चौथी स्थिति में स्वरतंत्रियाँ एक–दूसरे के इतना निकट आ जाती हैं कि हवा के गुज़रने का मार्ग लगभग बन्द–सा हो जाता है। केवल एक चौथाई मार्ग ही खुला रहता है। इस स्थिति में फुसफुसाहट वाली ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इस स्थिति में कंपन नहीं होता।

स्वरतंत्रियों की उपर्युक्त चार मुख्य स्थितियाँ हैं। स्वरतंत्रियों के ऊपर उन्हीं जैसी दूसरी स्वरतंत्रियाँ भी होती हैं, जिन्हें कृत्रिम स्वरतंत्रियाँ कहते हैं। कभी–कभी असली स्वरतंत्रियाँ दूर रहती हैं, किन्तु कृत्रिम स्वरतंत्रियाँ एक–दूसरे के निकट आकर वायु मार्ग को संकरा कर देती हैं, जिससे जपित स्वन उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के वाग्यंत्र से उत्पन्न होने वाले स्वनों के दो वर्ग हैं– स्वर और व्यंजन। इन दोनों की उत्पत्ति की क्रिया अलग–अलग है।

स्वरों के सृजन की प्रक्रिया :–

फेफड़ों से बाहर निकलने वाली हवा के कारण मुख–विवर में गूँज उत्पन्न होती है, जिससे स्वर स्वन उत्पन्न होते हैं। कुछ स्वनों के सृजन में यह गूँज मुख–विवर और नासिका–विवर दोनों में होती है। गूँज किस प्रकार की है, यह मुख–विवर के स्वरूप पर निर्भर करता है। मुख–विवर का स्वरूप जिह्वा, ओष्ठों, कौआ और नीचे के जबड़े की स्थिति पर निर्भर करता है।

विभिन्न स्वरों के सृजन में जीभ की अलग–अलग स्थितियाँ होती हैं। किसी स्वन के सृजन में जिह्वा का आगे वाला भाग कार्य करता है किसी के सृजन में जिह्वा का मध्य भाग तो किसी के सृजन में जिह्वा का पीछे वाला भाग कार्य करता है। जिह्वा के ये अलग–अलग भाग कभी ऊपर की ओर उठकर तालु के बिलकुल पास चले जाते हैं। तालु के बिल्कुल पास जाने की स्थिति को संवृत कहा जाता है। कभी–कभी जिह्वा के ये भाग बिल्कुल नीचे रह जाते हैं, इस स्थिति को विवृत कहा जाता है, कभी ये भाग संवृत के पास रहते हैं, कभी विवृत के पास। कुछ स्वरों के सृजन में जिह्वा अचल रहती है तो कुछ स्वरों के सृजन में जिह्वा एक स्वर स्थिति से दूसरी स्वर स्थिति में आ जाती है।

स्वन–सृजन में ओष्ठों की स्थिति भी महत्वपूर्ण होती है। कुछ स्वरों की उत्पत्ति के समय ओष्ठ गोल हो जाते हैं, जबकि कुछ के सृजन के समय गोल नहीं होते। कुछ स्वनों के सृजन के समय मुख–विवर में गूँज कम समय तक रहती है और कुछ के सृजन के समय अधिक देर तक।

कुछ स्वरों के सृजन के समय कौआ ऊपर उठकर नासिका–विवर को बंद कर देता है और सारी हवा मुँह से निकल जाती है। कुछ स्वरों के सृजन के समय कौआ बीच में ही लटका रह जाता है और हवा का कुछ अंश नाक से भी निकलता रहता है।

उदाहरण के रूप में हिन्दी 'अ' स्वर के सृजन के समय जिह्वा का मध्य भाग विवृत की स्थिति में रहता है, ओष्ठ गोल नहीं होते, गूँज कम समय तक होती है, कौआ नासिका विवर को बंद कर देता है और सारी हवा मुख–विवर से निकल जाती है। स्वर तंत्रियों में कम्पन भी होता है। 'ऊँ' स्वर के सृजन के समय जिह्वा का पिछला भाग संवृत की स्थिति में रहता है, ओष्ठ गोल हो जाते हैं, गूँज अधिक समय तक होती है और

कौआ बीच में लटकता रहता है, अतः हवा का कुछ अंश नाक से भी निकलता है। स्वर तंत्रियों में कम्पन भी होता है।

6.3.4 व्यंजन की परिभाषा

स्वीट एवं डैनियल जोन्स के अनुसार, ''व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकलने पाती या तो पूर्ण अवरुद्ध होकर इसे फिर बाहर निकलना पड़ता है या संकीर्ण मार्ग से घर्षण खाते हुए आगे बढ़ना पड़ता है या मध्य रेखा से हटकर एक या दोनों पाश्वों से निकलना पड़ता है या किसी भाग को कम्पित करते हुए निकलना पड़ता है। इस प्रकार वायुमार्ग में पूर्ण या अपूर्ण अवरोध उत्पन्न होता है।''

व्यंजन स्वनों का सृजन :–

स्वरयंत्र से निकलकर वायु ग्रसनी में पहुँचती है। कभी–कभी जिह्वामूल ग्रसनी की पिछली दीवार से सटकर वायु का प्रवाह रोक देता है, जिससे ग्रसनी स्पर्श नामक ध्वनि उत्पन्न होती है। अगर स्पर्श पूरा न हो और वायु संघर्ष करके निकले तो ग्रसनी संघर्षी नामक ध्वनि उत्पन्न होती है। जिह्वा के पीछे की ओर ऊपर लटकता हुआ मांस का टुकड़ा अलिजिह्वा है, इसे कौआ भी कहते हैं। यह ऊपर उठकर नासा–द्वार बन्द करने में सहायक होता है। अगर नासा–द्वार बन्द हो तो वायु ग्रसनी से होकर मुख–विवर में चली जाती है। 'नासिक्य व्यंजनों' में ग्रसनी की वायु नासिका विवर के मार्ग से ही निकलती है।

जिह्वा हमारे शरीर का एक अंग है, लेकिन उसके कई भाग माने जाते हैं। इसका कारण यह है कि अलग–अलग स्वनों के सृजन के समय जिह्वा के अलग–अलग भाग कार्य करते हैं। जिह्वापश्च कोमल तालु, (उत्कंठ) के नीचे फैला हुआ भाग है। यह कोमल तालु का स्पर्श करके भीतर से आती हुई हवा के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है। जिससे क् ख् ग् घ् आदि कोमल तालव्य स्वनों का सृजन होता है। जब जिह्वा–पश्च कोमल तालु का स्पर्श नहीं करता लेकिन सामान्य स्थिति से ऊपर उठता है, तब हवा संघर्ष करते हुए निकल जाती है। 'ख' इसी प्रकार का स्वन है।

कठोर तालु (मूर्धा) के नीचे फैला हुआ जिह्वा का भाग जिह्वाग्र कहलाता है जिह्वाग्र के कठोर तालु की ओर उठने और कार्य–पद्धति के अनुसार विविध स्वनों का सृजन होता है। जिह्वाग्र कठोर तालु से स्पर्श करके वायु मार्ग को पूर्णतया बंद कर देता है, जिससे च् छ् ज् आदि स्वनों का सृजन होता है। जिह्वाग्र तालु का स्पर्श करके वायु को पूरी तरह रोक कर 'ञ' स्वन का सृजन करता है। जैसे फ्रेंच (Agnuau) आञों–भेड़)। वर्स्व के नीचे फैला हुआ जिह्वा का भाग जिह्वा फलक कहलाता है। यह ऊपर के दाँतों और वर्स्व का स्पर्श करके स्वनों के सृजन में सहायक होता है। कठोर तालु से स्पर्श की स्थिति में जिह्वा के एक या दो पार्श्व खुले रहने पर तालव्य–पार्शिवक स्वनों का सृजन होता है। इटालियन भाषा में 'ग्ल (gl) इसी प्रकार का स्वन है।

जिह्वा का सबसे आगे रहने वाला बिन्दु जिह्वानोक कहलाता है। यह भाग दाँतों, वर्स्व और कठोर तालु की ओर उठकर अनेक क्रियाएँ करता है, और इसे छू भी सकता है, जिससे अनेक स्वनों का सृजन होता है। जिह्वा–नोक के वर्स्व को स्पर्श करने के फलस्वरूप वायु का प्रवाह बाधित होता है और वह एक या दोनों पार्श्वों से निकल जाती है, जिससे 'ल्' स्वन का सृजन होता है। ऊपर के दाँतों का स्पर्श करने पर त् थ् द् आदि ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। यह ऊपर को मुड़कर कठोर तालु का स्पर्श करती हैं जिससे ट् ठ् ड् आदि ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। जिह्वानोक के वर्स्व पर अनेक आघात करने से लुंठित 'र' स्वन का सृजन होता है। जिह्वा द्वारा ऊपर उठकर कठोर तालु का स्पर्श करके झटके से नीचे आने पर ड़् ढ़ उत्क्षिप्त स्वनों का सृजन होता है।

हिन्दी में कवर्ग आदि पाँच वर्गों के अंतिम तीन (ग, घ, ङ ; ज, झ, ञ ; ड, ढ, ण आदि) स्वनों तथा य, र, ल, व, ह, ढ आदि के सृजन के समय स्वरतंत्रियाँ काँपती हैं। ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, आदि स्वनों के सृजन के समय श्वास–बल अधिक लगता है।

6.4 कठिन शब्द

1. द्रव्य
2. कम्पन
3. वाग्यंत्र
4. वायुमण्डल
5. संप्रेषण
6. घोष
7. विमोचन
8. झंकार
9. विवर
10. नासिक्य

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 'स्वन' को परिभाषित कीजिए।

उ. ———————————————————————————————

———————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 2 स्वानिकी किसे कहते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 3 'स्वर' को परिभाषित कीजिए।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 4 व्यंजन को परिभाषित करते हुए स्वर और व्यंजन का अन्तर स्पष्ट करें।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

6.6 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

—————

वाक् अवयवों का परिचय

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 वाक् अवयवों का परिचय

7.4 निष्कर्ष

7.5 कठिन शब्द

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.7 पठनीय पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप मनुष्य–शरीर के वाक्–अवयवों से परिचित हो सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

शरीर के जिन अवयवों से ध्वनि का उत्पादन होता है, उनको उच्चारण के अवयव, ध्वनि यन्त्र या वाग्ययंत्र कहा जाता है। ध्वनि के उत्पादन के साथ–साथ उनके उच्चारण में भी समस्त अवयवों का सहयोग होता है।

7.3 वाक्–अवयवों का परिचय

ध्वनियों के निर्माण में मनुष्य–शरीर के कुछ अंग उत्तरदायी होते हैं। इन अंगों को वाक्–अवयव या वाक्–अंग कहा जाता है। वाक्–अवयवों का सामूहिक नाम वाग्यंत्र है। मनुष्य–शरीर में निम्नलिखित वाक्–अवयव होते हैं :

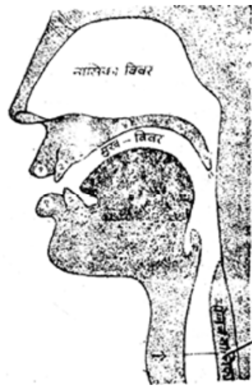

1.	ओष्ठ	10.	जिह्वामध्य
2.	दन्त	11.	जिह्वापश्च
3.	वर्स्व	12.	जिह्वामूल
4.	कठोर तालु (मूर्धा)	13.	नासाद्वार
5.	कोमल तालु (उत्कंठ)	14.	ग्रसनी
6.	अलिजिह्वा	15.	अभिकाकल
7.	जिह्वानोक	16.	स्वरयंत्र
8.	जिह्वाफलक	17.	स्वरतंत्रियाँ
9.	जिह्वाग्र	18.	फेफड़े

1. **ओष्ठ** – दोनों ओठों के लिए 'ओष्ठ' शब्द का प्रयोग किया जाता है। ध्वनियों के सृजन के लिए निचला ओठ अधिक सक्रिय होता है। यह ऊपर के ओंठ के अतिरिक्त ऊपर के दाँतों से भी सम्पर्क स्थापित करता है।

2. **दन्त** – दाँतों के लिए 'दन्त' शब्द का प्रयोग किया जाता है, किन्तु वास्तव में ध्वनियों के उच्चारण में ऊपर के दाँतों का ही महत्त्व है और 'दंत से हमारा तात्पर्य अधिकतर उन्हीं से होता है। यह जिह्वानोक जिह्वाफलक और निचले ओंठ का कार्य क्षेत्र है।

3. **वर्स्व–कठोर तालु – (मूर्धा)** के और ऊपर के दाँतों के बीच का भाग वर्स्व है। अँगुली अथवा जिह्वानोक से छूने पर ऊपर के दाँतों के पीछे उठा हुआ एक खुरदरा भाग मिलता है। इसी का नाम वर्स्व है यह जिह्वानोक और जिह्वाफलक का कार्य–क्षेत्र है।

4. **कठोर तालु (मूर्धा)** – कोमल तालु के आगे का कठोर भाग कोमल तालु अथवा मूर्धा है। मूर्धा शब्द

का प्रयोग कठोर तालु के पिछले भाग के लिए किया जाता है, परन्तु कुछ विद्वान इस शब्द का प्रयोग समग्र कठोर तालु के लिए भी करते हैं। कठोर तालु जिह्वानोक का कार्य–क्षेत्र है।

5. **कोमल तालु (उत्कंठ)** – अलिजिह्वा के आगे का तालु–विभाग जो अंगुली से छूने पर कोमल प्रतीत होता है, कोमल तालु अथवा उत्कंठ कहलाता है। यह जिह्वापश्च का कार्य–क्षेत्र है। नासा–द्वार बन्द करने में यह पीछे की ओर हटता है।

6. **अलिजिह्वा** – जीभ के पीछे की ओर ऊपर से लटकता हुआ माँस का टुकड़ा अलिजिह्वा है, जिसे बोलचाल में लोग 'कौआ' कहते हैं। यह नासा–द्वार बन्द करने में ऊपर उठकर सहायक होता है, जिह्वापश्च के पिछले भाग से सम्पर्क कर सकता है, उसकी ओर कुछ सीमा तक बढ़कर रुक सकता है ताकि वायु के लिए एक संकीर्ण मार्ग बना रहे और वायु के झटके से कंपन कर सकता है।

7. **जिह्वानोक** – जीभ का सबसे आगे रहने वाला बिन्दु जिह्वानोक है। जीभ के समस्त भागों में नोक सबसे अधिक गतिशील है। यह दाँतों, वर्स्व और मूर्धा की ओर उठकर अनेक प्रकार की क्रियाएँ करती है और छू भी सकती है।

8. **जिह्वाफलक** – वर्स्व के नीचे फैला हुआ जिह्वा का अंश जिह्वाफलक कहलाता है। यह ऊपर के दाँतों और बर्स्व से सम्पर्क कर सकता है।

9. **जिह्वाग्र और जिह्वामध्य** – जिह्वा का जो भाग कठोर तालु के नीचे रहता है, उसे जिह्वाग्र कहते हैं। जिह्वाग्र मूर्धा की ओर उठता है और उसे छू भी सकता है। आवश्यकता पड़ने पर जिह्वाग्र के उत्तरांश और जिह्वापश्च के पूर्वांश के लिए सम्मिलित रूप से जिह्वामध्य शब्द का प्रयोग किया जाता है।

10. **जिह्वापश्च** – जिह्वापश्च जीभ का वह भाग है जो उत्कंठ अर्थात् कोमल तालु के नीचे विस्तीर्ण रहता है। यह उत्कंठ की ओर उठ सकता है और उसे छू भी सकता है। इस उन्नयन की मात्रा और पद्धति के अनुसार विविध ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। जिह्वापश्च का पीछे की ओर का अन्तिम भाग अलिजिह्वा से सम्पर्क कर सकता है।

11. **जिह्वामूल**–जिह्वामूल जिह्वा के पिछले भाग को कहते हैं, जहाँ से जिह्वा का अन्त हो जाता है। जिह्वामूल ग्रसनी की पिछली दीवार की ओर बढ़ सकता है और उसे छू भी सकता है।

12. **नासाद्वार** – ग्रसनी के ऊपर स्थित नासिका–विवर का प्रवेश द्वार नासा–द्वार कहलाता है। नासा–द्वार बन्द हो तो वायु–प्रवाह ग्रसनी और मुख–विवर के बीच होता है। नासा–द्वार खुला रहने पर बोली जाने वाली ध्वनियों में अनुनासिकता आ जाती है। 'नासिक्य व्यंजनों' में ग्रसनी की वायु नासिका–विवर के मार्ग से ही निकलती है। 'सानुनासिक स्वरों' में यह वायु मुख–विवर के साथ–साथ नासिका–विवर से भी निकलती है।

13. **ग्रसनी** – स्वरयंत्र से लेकर नासाद्वार तक फैला हुआ जिह्वामूल के पीछे का विवर ग्रसनी कहलाता है। कभी–कभी जिह्वामूल ग्रसनी की पिछली दीवार से सटकर वायु का प्रवाह रोक देता है जिससे

'ग्रसनी स्पर्श' नामक ध्वनि उत्पन्न होती है। पूर्ण स्पर्श न करके एक संकीर्ण मार्ग छोड़ देने से वायु संघर्षपूर्वक निकलती है, जिसके फलस्वरूप 'ग्रसनी संघर्षी' नामक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

14. **अभिकाकल**–अभिकाकल का कार्य केवल यह है कि भोजन के समय काकल को बन्द कर दे अर्थात् श्वास–नली में खाने–पीने की वस्तुएँ न जाने दें।

15. **स्वरयंत्र** – फेफड़े से चली हुई वायु स्वरयंत्र में पहुँचती है। स्वरयंत्र हमारे वाग्यंत्र का एक अत्यंत महत्पूर्ण अंग है। कुछ ध्वनियों के निर्माण में समग्र स्वरयंत्र को आवश्यकतानुसार ऊपर–नीचे किया जाता है।

16. **स्वरतंत्रियाँ** – स्वरयंत्र में रंगमंच के पर्दों की भांति दो तंत्रियाँ होती हैं जिन्हें स्वरतंत्रियाँ कहा जाता है। इनके बीच का अवकाश काकल कहा जाता है। ये तंत्रियाँ विभिन्न प्रकार से खुलती और बन्द होती हैं तथा इस प्रकार वायु को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करके ध्वनियों में भेद उत्पन्न करती है।

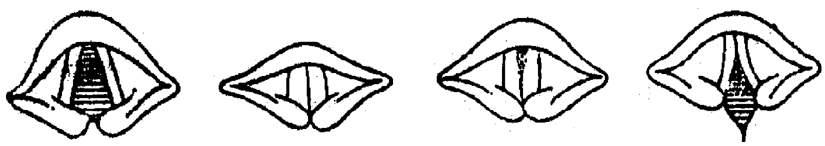

(1) खुली (अघोष) (2) बन्द (3) घोष (4) फुसफुसाहट

पहली स्थिति में स्वर–तंत्रियाँ दूर–दूर रहती हैं और उनके बीच से निकलती हुई वायु का कोई प्रभाव उनकी स्थिति पर नहीं पड़ता। इस प्रकार की ध्वनियाँ अघोष कही जाती हैं। दूसरी स्थिति में दोनों स्वरतंत्रियाँ परस्पर सट जाती हैं और दृढ़तापूर्वक पल भर जुड़ी रहती हैं। फलस्वरूप वायु का प्रवाह रूक जाता है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाली ध्वनि का नाम काकल्य स्पर्श है। तीसरी स्थिति में स्वर–तंत्रियाँ परस्पर समीप आ जाती हैं और उनके बीच का मार्ग समाप्त–सा हो जाता है। लेकिन स्वर–तंत्रियाँ बहुत दृढ़ता के साथ नहीं जुड़तीं, फलतः वायु अपने निकलने भर का मार्ग बना लेती है। इससे स्वरतंत्रियों में कम्पन होने लगता है। यह कम्पन घोष कहा जाता है। जपन अथवा फुसफसाहट चौथी स्थिति है जिसका उत्पादन कई प्रकार से किया जाता है। कभी–कभी स्वरतंत्रियों के बीच थोड़ा–सा मार्ग रहता है किन्तु उनके समीप वायु में स्थानीय विक्षोभ होता है, घोष नहीं होता। कभी–कभी स्वर–तंत्रियाँ दृढ़तापूर्वक जुड़ जाती हैं, किन्तु उनके पीछे दर्वीकास्थियाँ अपने बीच से रास्ता बना देती हैं। अन्य कई प्रकार की जपित ध्वनियों के लिए स्वरतंत्रियाँ अन्य कई स्थितियाँ ग्रहण करती हैं। भनभनाहट के उत्पादन में स्वरतंत्रियों में कम्पन्न तो होता है किन्तु साथ ही वायु में स्थानीय विक्षोभ भी होता है।

18. **फेफड़े** – अधिकांश ध्वनियों का निर्माण फेफड़ों से बाहर आने वाली वायु के द्वारा होता है। ये सक्रियतापूर्वक वायु को बाहर की ओर धकेलते रहते हैं। यह वायु प्रक्षेप एक लय में होता है। यही लय अनेक भाषाओं में 'वर्णों' का निर्धारण करती है।

7.4 निष्कर्ष

अतः मनुष्य के मुख–विवर एवं कंठ से विविध ध्वनियां उच्चरित होती हैं। जिनका स्रोत्र मनुष्य शरीर में विविध उच्चारण अवयव हैं जिनके सहयोग से अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।

7.5 कठिन शब्द

1. सक्रिय, 2. जिह्वाफलक, 3. जिह्वानोक, 4. नासा–द्वार, 5. वर्स्व, 6. उत्तरांश, 7. उत्कंठ, 8. विस्तीर्ण, 9. काकल्य, 10. विक्षोभ।

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 वाक् अवयवों का परिचय दीजिए।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 2 मनुष्य शरीर में कितने उच्चारण अवयव हैं, स्पष्ट कीजिए।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

7.7 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

—————

स्वरों का वर्गीकरण

8.0 रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 स्वरों का वर्गीकरण

8.4 मानस्वर

8.5 कठिन शब्द

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.7 पठनीय पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप–

– स्वरों का किन आधारों पर वर्गीकरण किया जाता है, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

– मानस्वर से परिचित होंगे।

8.2 प्रस्तावना

स्वर वे ध्वनियां हैं जिनके उच्चारण में वायु मार्ग में कहीं अवरुद्धता न हो। स्वरों का वैभिन्न्य मुख विवर की विभिन्न मुद्राओं, जिह्वा के पृथक भागों पर विभिन्न मात्रा में ऊपर उठने और ओठों की आकृति पर निर्भर होता है। समस्त स्वर प्रायः सघोष होते हैं, किन्तु कुछ भाषाओं में कुछ ऐसे भी स्वर पाये जाते हैं जिन्हें सघोष ध्वनियों के अन्तर्गत वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। ऐसे स्वरों को फुसफुसाहट वाले स्वर कहते हैं।

8.3 स्वरों का वर्गीकरण

1. **मात्रा का आधार :–** मात्रा से अभिप्राय यह है कि स्वर के उच्चारण में कितना समय लगता है। मात्रा को ध्यान में रखकर स्वर चार प्रकार के माने जाते हैं :–

क. ह्रस्व ह्रस्व स्वर

ख. ह्रस्व स्वर

ग. दीर्घ स्वर

घ. प्लुत स्वर। अब आगे इनका विवेचन किया जाएगा :–

ह्रस्व ह्रस्व स्वरः– ये वे स्वर हैं जिनके उच्चारण में ह्रस्व स्वर से कम समय अर्थात् आधी मात्रा का समय लगे। अवधी में 'रामु' के 'उ' का उच्चारण जिस प्रकार किया जाता है, वह आधी मात्रा का समय माना जा सकता है।

ह्रस्व स्वर :– मात्रा से अभिप्राय है, स्वरों में लगे जाने वाले समय से। जिस स्वर के उच्चारण में एक मात्रा का समय लगता है, उसे ह्रस्व स्वर कहते हैं। इसको ध्यान में रखकर हिंदी के ह्रस्व स्वर इस प्रकार हैं :– अ, इ, उ।

दीर्घ स्वर :– ये वे स्वर हैं जिनके उच्चारण में एक मात्रा से अधिक अर्थात् दो मात्राओं का समय लगता है। हिंदी के दीर्घ स्वर ये हैं :– आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

प्लुत स्वर :– ये वे स्वर हैं जिनके उच्चारण में दीर्घ स्वर की अपेक्षा अधिक समय लगे। प्लुत स्वर में आवश्यकतानुसार तीन या चार मात्राओं या और अधिक समय लग सकता है। गायन में मात्राओं की दीर्घता को इस प्रकार दिखाया जाता है :– जाऽ, जाऽऽ......आदि।

2. **ओष्ठों की आकृति** :– स्वरोच्चारण में ओष्ठों की आकृति कभी गोल तथा कभी खुली रहती है। जिन स्वरों के उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति गोल होती है, उन्हें गोलीकृत (Rounded) स्वर कहते हैं। अंग्रेजी का 'O' या हिंदी का 'ओ' गोलीकृत स्वरों के उपयुक्त उदाहरण हैं। जिन स्वरों के उच्चारण में होंठों की स्थिति खुली रहती है, उन्हें अगोलीकृत स्वर (unrounded) कहते हैं। हिंदी में अगोलीकृत स्वरों के उदाहरण इस प्रकार हैं :– आ, इ, ई, ए, ऐ आदि।

3. **जीभ के विभिन्न भागों की सक्रियता** :– स्वर के उच्चारण में जीभ का कौन–सा भाग करण (Articulator) का कार्य करता है, उसके आधार पर भी स्वरों को वर्गीकृत किया जाता है। जीभ के विभिन्न भागों के सक्रिय होने के आधार पर स्वर तीन प्रकार के माने गए हैं :– अग्र स्वर, मध्य स्वर तथा पश्च स्वर।

जिस स्वर के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग सक्रिय होता है अर्थात् जीभ का अग्र भाग करण का कार्य करता है, उसे अग्र स्वर कहते हैं। हिंदी के अग्र स्वर इस प्रकार हैं :– इ, ई, ए, ऐ। जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ का मध्य भाग करण का कार्य करता है, उन्हें मध्य स्वर (Mid vowel) कहते हैं। /अ/ हिंदी का मध्य स्वर है। इसी प्रकार जीभ के पश्च भाग से सक्रिय होने वाले स्वरो ंको पश्च स्वर (Back vowel) कहते हैं। उ, ऊ, ओ, औ, आ हिंदी के पश्च स्वर हैं।

4. मुख विवर के संकीर्ण अथवा विकीर्ण होने के आधार पर :–

स्वरों के उच्चारण में कभी मुख विवर खुला रहता है या कभी अधखुला। इसी प्रकार यह कभी संकीर्ण होता है, तो कभी अर्द्ध संकीर्ण। वस्तुतः जीभ की विभिन्न ऊँचाईयों के आधार पर मुख–विवर कभी संकीर्ण तथा कभी विकीर्ण होता है। मुख–विवर की संकीर्णता–विकीर्णता के आधार पर स्वरों को चार भागों में वर्गीकृत किया गया है :– संकीर्ण, अद्र्ध संकीर्ण, अद्र्ध विकीर्ण। जीभ की विभिन्न ऊँचाइयों तथा मुख–विवर के संकीर्ण अथवा विकीर्ण होने के आधार पर हिंदी के स्वरों का वर्गीकरण निम्नलिखित चित्र से समझा जा सकता है:–

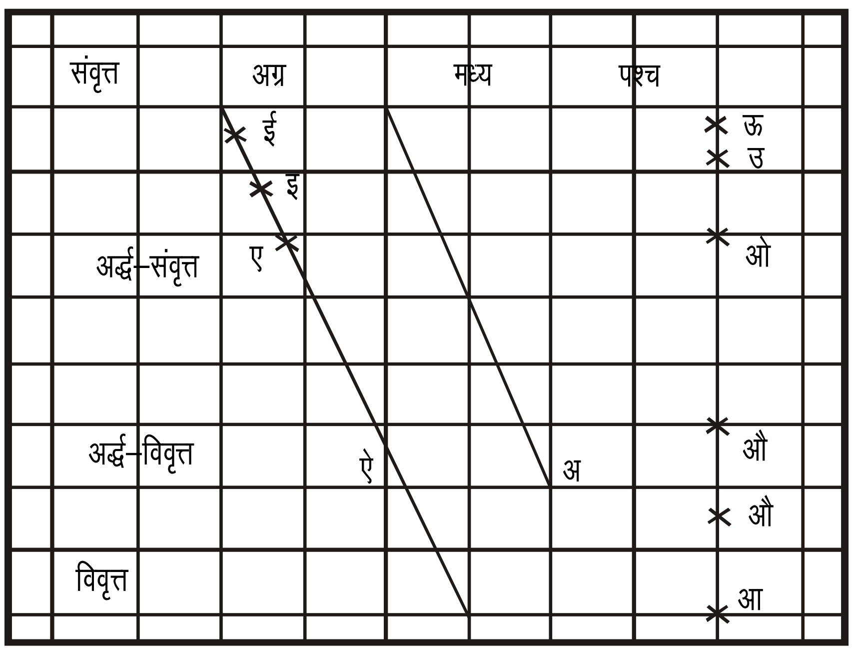

संवृत्त अग्र स्वर (हिंदी के संदर्भ में) इ ई

अद्र्ध–संवृत्त ए ओ

अद्र्ध–विवृत्त ऐ अ औ

विवृत्त आ ऑ "अँग्रेजी–आगत ध्वनि

टिप्पणी :– हिंदी के शुद्ध स्वर दस है।

5. जिह्वा की चल और अचल स्थितियों के आधार पर

जिह्वा की चल तथा अचल स्थितियों के आधार पर स्वरों का वर्गीकरण किया जाता है। किसी स्वर के उच्चारण में जब जिह्वा का केवल एक ही भाग सक्रिय होता है या जीभ का केवल एक ही भाग करण का कार्य करता है, उसे मूल स्वर (Monophthong) कहते हैं। निम्नलिखित स्वर मूल स्वर हैं :– अ, आ, इ, ई उ, ऊ, ए, ओ। दूसरी ओर, जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ के एक से अधिक भाग सक्रिय होते हैं, उन्हें संयुक्त स्वर (संध्यक्षर) (Diphthong) कहते हैं। इसका आशय यह है कि संयुक्त स्वर के उच्चारण में जीभ चल होती है। /ऐ/ और /औ/ जैसे स्वर जीभ के एक से अधिक भागों से उच्चरित होते हैं। कथन का स्पष्टीकरण दिए गए चित्र से हो सकता है।

जिह्वा के व्यवहृत भाग

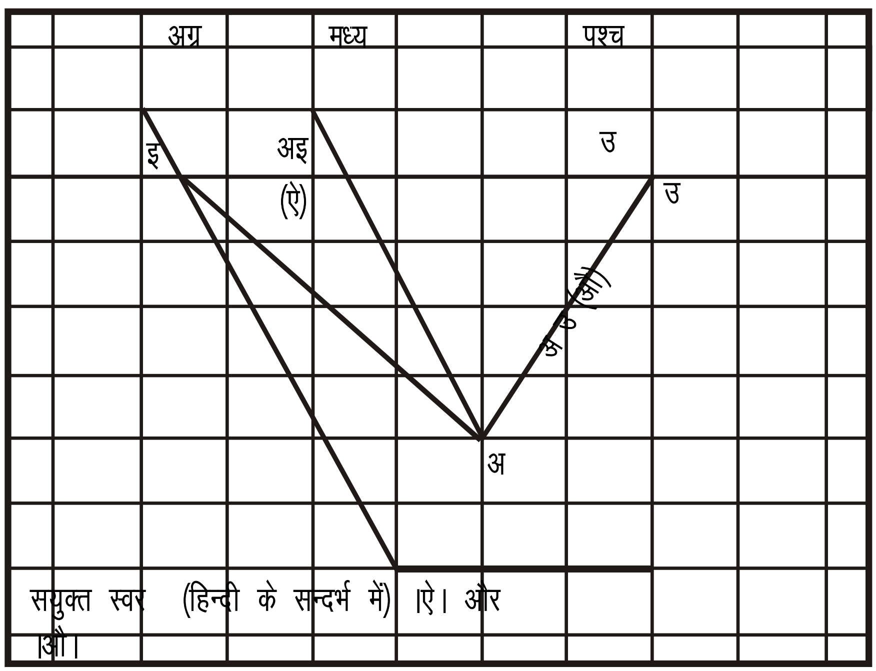

प्राचीन स्वर तथा अर्वाचीन स्वर

मानव–मुख से उच्चरित होने वाली ध्वनियों (स्वनों) को वर्गीकृत करने की प्रथा बहुत प्राचीन है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार स्वनों को दो वर्गों में बाँटा जाता है : स्वर तथा व्यंजन। स्वर वे माने गए हैं जिनके उच्चारण में किसी अन्य ध्वनि की सहायता नहीं लेनी पड़ती है। 'स्वयं राजनते ते स्वराः' यह उक्ति इसी कथन

की पुष्टि करती है। स्वर उदात्त माने गए हैं। भाषा के संदर्भ में कहेंगे कि स्वरों में मुखरता (Sonority) होती है। इसके विपरीत व्यंजनों में मुखरता नहीं होती है।

संस्कृत परंपरा के अनुसार स्वरों को वर्गीकृत करने के जो प्रयास किए गए हैं, उसमें वर्णों को ध्यान में रखा गया है। उदाहरणार्थ /इ/ के साथ /ई/ वर्ण रखने का आधार यह है कि इनमें ध्वन्यात्मक साम्य के साथ रूपात्मक साम्य भी है किंतु प्रयोग के स्तर पर इनमें व्यतिरेक पाया जाता है। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी होगी कि स्वरों का यह विवेचन स्वर–वर्णों की प्रधानता या भाषा के लिखित रूप को ध्यान में रखकर किया गया है।

स्वरों का जो अर्वाचीन वर्गीकरण किया गया है, उसके पीछे वैज्ञानिक आधार है। डेनियल जोन्स ने भाषा की वैज्ञानिकता को ध्यान में रखकर मान स्वरों का निर्धारण किया जो किसी भी भाषा में प्राप्त स्वर–व्यवस्था को निर्धारित करने में हमारी सहायता करता है। स्वर चतुर्भुज की सहायता से संसार की किसी भी भाषा से स्वरों की पहचान की जा सकती है। इसी आधार पर मुख की संकीर्णता–विकीर्णता तथा जिह्वा की विभिन्न ऊँचाई–निचाई को ध्यान में रखकर स्वरों को चार वर्गों (संवृत्त, विवृत, अर्ध संवृत्त तथा अर्ध–विवृत्त) में बाँटा गया है।

स्वर–वर्गीकरण की अर्वाचीन अमेरिकी पद्धति भी ध्यान देने योग्य है। यह पद्धति यूरोप में प्रचलित रही है। जीभ की ऊँचाई–निचाई या उसके अग्र, पश्च, मध्य के आधार पर अमेरिका में और भेद किए गए हैं। ब्लॉक ओर ट्रैगर ने स्वरों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है – उच्च, निम्नतर उच्च, उच्चतर मध्य, मध्य, निम्नतर मध्य, उच्चतर निम्न तथा निम्न। इसको निम्नलिखित चित्र से समझा जा सकता है।

अग्र		मध्य		पश्च	
अवृत्तमुखी	वृत्तमुखी	अवृत्तमुखी	वृत्तमुखी	अवृत्तमुखी	वृत्तमुखी
i	ü=y	ɨ	u̇	ï=ɯ	u
⁚	Ü	ᵻ	U̇	ɪ	ʊ
ϵ	ö=ø	ė	ȯ	ë=ɤ	ɔ
E	Ω̈	Ė=ɘ	Ω̇	Ë	∩
ɛ	ɔ̈=œ	ɛ̇	ɔ	ɛ̈=ʌ	ɔ
æ	ω̈	æ̇	ω̇	æ̈	ω
a	ɒ̈	a	ɒ	ä=[illegible]	ȯ

स्वर–स्वनों का प्राचीन वर्गीकरण

मानव–मुख से उच्चरित होने वाले स्वनों को दो भागों में विभाजित करने की प्रथा बहुत पुरानी है। ये दो भाग हैं, स्वर तथा व्यंजन। परंपरागत व्याकरण के अनुसार स्वर की परिभाषा इस प्रकार दी गई है– "स्वर वे हैं जो किसी दूसरी ध्वनि की सहायता के बिना बोले जाते हैं।" इसके विपरीत व्यंजन वे हैं जो स्वरों की सहायता से बोले जाते हैं। ये परिभाषाएं भारतीय दृष्टिकोण से भले ही सही हों तथा भारतीय आर्यभाषाओं के संदर्भ में उचित हों किंतु आधुनिक भाषा–विज्ञान के अनुसार ये परिभाषाएं अब मान्य नहीं हैं।

8.4 मानस्वर

मानस्वर उन स्वरों को कहते हैं जो किसी भाषा–विशेष के नहीं होते, बल्कि विभिन्न भाषाओं के स्वरों के स्थान–निर्धारण के लिए बताये हुए मानदंड हैं। इन्हें मानक स्वर अथवा आदर्श स्वर भी कहते हैं। इनकी संख्या अभी तक आठ निश्चित हो सकी है। ये मुख–विवर में स्वर क्षेत्र की परिधि पर स्थिति है।

सबसे पहले स्वरों के उच्चारण के समय जिह्वा के स्थान का ठीक–ठीक अध्ययन करने का प्रयास 1653 ई. के लगभग जॉनवालिस ने किया–फिर 1780 के लगभग स्वावियन विद्वान् **हेलवैग** ने एक त्रिभुज बनाया–

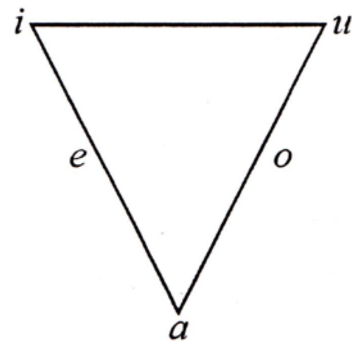

त्रिभुज का चित्र

स्वरों के वर्णन में मानक विन्दूओं की कल्पना सबसे पहले ए.जे. एलिस ने 1944 में की। इस सम्बन्ध में 'कार्डिनल' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ए.एम. बेल ने सन् 1967 ई. में किया। आगे चलकर डैनियल जोन्स तथा उनके सहयोगियों ने विभिन्न भाषाओं में स्वरों के उच्चारण के समय एक्स–रे फोटो लेकर उसका औसत निकालकर स्वरों के उच्चारण के समय जिह्वा की स्थिति को निश्चित किया। स्वरों का स्वाभाविक स्थान कुछ इस प्रकार का है–

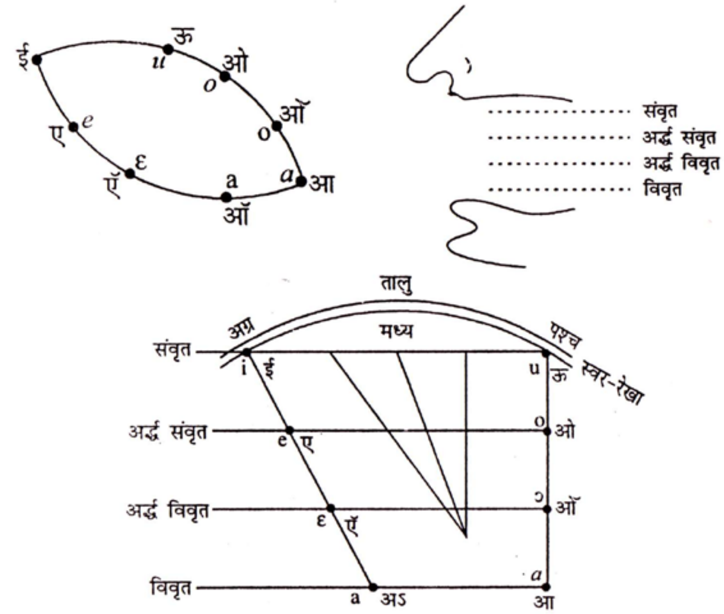

चित्र

मुख–विवर में जिह्वा की चार स्थितिया। इस प्रकार देखी जा सकती हैं–

1. संवृत–बिलकुल सैंकरा
2. अर्द्ध संवृत–कुछ सँकरा
3. अर्द्ध विवृत–कुछ खुला
4. विवृत–बिलकुल खुला

अग्र मध्य और पश्च जिह्वा के भाग का द्योतन करते हैं।

मान स्वरों को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(क) प्रधान मानस्वर–ये आठ मान स्वर हैं। डेनियल जोन्स की कल्पित स्वर–संख्या आठ है, किन्तु उनके स्वरूप और क्रम हिन्दी से कुछ भिन्न हैं–जैसे– ई ए, ऍ, अ ऽ, आ, ओं, ओ, ऊ – 08 स्वर

इनका विवरण इस प्रकार है–

1. ई (*i*) आवृत्तमुख, दृढ़ अग्र, संवृत, निरनुनासिक
2. ए (*e*) आवृत्तमुखी, दृढ़ अग्र, अर्द्धसंवृत, निरनुनासिक
3. ऍ (*E*) आवृत्तमुखी, शिथिल, अग्र, अर्द्धवृत्त, निरनुनासिक
4. अ ऽ (*a*) ऑ (अ से कुछ अधिक) स्वल्पमुखी–अग्र, विवृत्त, अवृत्तमुखी निरनुनासिक
5. आ (*a*) पश्च, विवृत्त, अवृत्तमुखी, निरनुनासिक।

6. ओ (*o*) पश्च, अर्द्धविवृत्त, वृत्तमुखी, निरनुनासिक।

7. ओ (*a*) पश्च, अर्द्ध संवृत्त, दृढ़, वृत्तमुखी

8. ऊ (*u*) पश्च, संवृत्त, वृत्तमुखी, निरनुनासिक, दृढ़।

(ख) **अप्रधान या गौण मानस्वर (Secondary cardinal vowel)**–गौण मानस्वर 7 ही माने गये हैं–जिनसे मिलते–जुलते स्वर कुछ भाषाओं में चलते हैं। जिह्वा को प्रधान मानस्वरों की स्थिति में रखते हुए यदि हम होंठों की स्थिति बदल दें तो गौण मानस्वर उच्चरित होंगे, जैसे–ई, ए, ऐ एवं अ के उच्चारण के समय होंठ प्रसृत अवस्था में रहते हैं, किन्तु गौण मानस्वर में होंठों की स्थिति वृत्तमुखी हो जाती है। इसी भाँति मानस्वर ऊ, ओ, ऑ और आ के उच्चारण करते समय होंठों की स्थिति वृत्त–मुखी होती है। जब कि गौण मान स्वर के उच्चारण के समय उक्त स्वर ही उच्चरित होते हैं, पर होंठों की अवस्था प्रसृत हो जाती है।

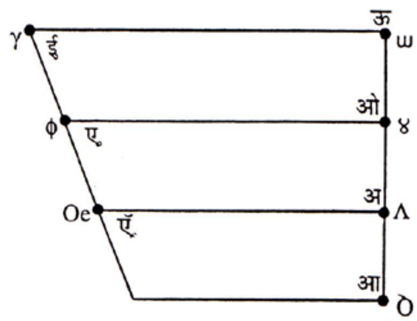

केन्द्रीय स्वरों के भी गौण मान स्वर रूप हो सकते हैं। जिस किसी भाषा के स्वरों का वर्णन करना होता है, उपर्युक्त (प्रधान या अप्रधान मान स्वर) में जिस स्वर के समीप जो स्वर होता है, उसे वही नाम दे देते हैं।

8.5 कठिन शब्द

1. ह्रस्व
2. प्लुत
3. गोलीकृत
4. पश्च
5. विवर
6. अग्रभाग
7. संकीर्ण
8. संध्यक्षर
9. व्यतिरेक
10. प्रसृत

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 स्वरों के वर्गीकरण पर चर्चा कीजिए।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 2 स्वरों का वर्गीकरण किन आधारों पर होता है, स्पष्ट कीजिए।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 3 मानस्वर किसे कहते हैं, स्पष्ट कीजिए।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 4 'मानस्वरों' पर टिप्पणी कीजिए।

उ. ____

____

____

____

8.7 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

व्यंजनों का वर्गीकरण

9.0 रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 व्यंजनों का वर्गीकरण

9.4 कठिन शब्द

9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.6 पठनीय पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप व्यंजनों के वर्गीकरण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। व्यंजनों को स्थान, प्रयत्न, घोषत्व तथा प्राणत्व के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है इसका बोध भी हो सकेगा।

9.2 प्रस्तावना

मानव–मुख से उच्चरित ध्वनि–संकेतों को सामान्यतः दो वर्गों में बाँटने की प्रथा है। इन वर्गों के नाम हैं, स्वर तथा व्यंजन। स्वरों का उच्चारण बाधा–रहित होता है। जीभ की विभिन्न ऊँचाईयों तथा मुख–विवर की संकीर्णता अथवा विकीर्णता के कारण स्वर कहीं संवृत्त होते हैं तो कभी विवृत्त। स्वर प्रायः घोष होते हैं। स्वरों के विपरीत व्यंजनों का उच्चारण बाधा–सहित होता है। व्यंजन के उच्चारण में फेफड़ों से आने वाली वायु स्वरतंत्री या मुख–मार्ग में कहीं पूर्णरूपेण रोकी जाती है या अत्यंत संकुचित मार्ग से निकलती है। डॉ॰ भोलानाथ तिवारी के अनुसार– ''व्यंजन वह अघोष या सघोष ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकलने पाती ....।'' बाबूराम सक्सेना के शब्दों में...''व्यंजन वह अघोष या सघोष ध्वनि है जिसके मुख–विवर से निकलने में पूर्ण रूप से अथवा कुछ मात्रा में बाधा उत्पन्न होती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर स्वर तथा व्यंजन का अंतर इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :–

1. स्वरोच्चारण में वायु का विमोचन अबाध गति से होता है। इसके विपरीत व्यंजनों में वायु का विमोचन सबाध गति से होता है।

2. स्वरोच्चारण में मुखरता (sonority) होती है अर्थात् इसकी ध्वनि दूर तक अनुगूँज करती है। इसके विपरीत व्यंजन मुखरित नहीं होते।

3. स्वर प्रायः सघोष होते हैं। दूसरी ओर व्यंजन मुखरित नहीं होते हैं।

4. स्वरों की चर्चा करते समय प्राणत्व की बात नहीं आती, जबकि व्यंजन स्वनों का वर्गीकरण प्राणत्व (अल्पप्राण तथा महाप्राण) के आधार पर किया जाता है।

9.3 व्यंजनों का वर्गीकरण

स्वन–विज्ञान में व्यंजनों का वर्गीकरण निम्न आधारों पर किया जाता है :–

1. स्थान के आधार पर
2. प्रयत्न के आधार पर
3. घोषत्व के आधार पर
4. प्राणत्व के आधार पर

स्थान का आधार

व्यंजन के उच्चारण में किसी विशिष्ट स्थान का योग होता है, वह स्थान उस व्यंजन के स्थान का आधार माना जाता है। उदाहरणार्थ,/प्/ व्यंजन का उच्चारण–स्थान ओंठ है या /त्/ का उच्चारण स्थान दाँत हैं। अतः कहेंगे कि /प्/ ओष्ठ्य है तथा /त/ दंत्य है।

प्रयत्न का आधार

किसी व्यंजन को उच्चरित करने के लिए उच्चारण अवयव किस प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं, उन चेष्टाओं या गतिविधियों को प्रयत्न कहते हैं। उदाहरणार्थ /प्/ को उच्चरित करने के लिए ऊपरी होंठ तथा निचला होंठ आपस में मिलते हैं। इसे प्रयत्न कहते हैं।

घोषत्व का आधार

जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कंपकंपी नहीं होती, उन्हें अघोष व्यंजन कहते हैं।

उदाहरणः– क् ख् च् छ् ट् त् थ् आदि। जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कंपन होता है, अर्थात् वे झंकार की ध्वनि उत्पन्न करते हैं, उन्हें घोष (सघोष) व्यंजन कहते हैं। उदाहरण :– ग् घ् ज् झ् ड् ढ् आदि।

प्राणत्व का आधार

जिन व्यंजनों के उच्चारण में वायु में हकार की ध्वनि नहीं गूँजती, उन्हें अल्पप्राण व्यंजन कहते हैं। दूसरी ओर महाप्राण व्यंजनों में हकार की ध्वनि गूँजती है। उदाहरण :–

अल्पप्राण :– क् ग् च् ज् ट् ड् ......आदि

महाप्राण :– ख् घ् छ् झ् ठ् ढ् ......आदि

स्थान का आधार :– स्थान के आधार पर व्यंजन–स्वनों का वर्गीकरण निम्नलिखित विभागों में किया जाता है :–

1. **द्वयोष्ठ्य** :– जब व्यंजनों के उच्चारण में भीतर से आती हुई साँस में दोनों ओठों के द्वारा विकार लाया जाता है, तब उन स्वनों को ओष्ठ्य व्यंजन कहते है। उदाहरण :– /प्/ /फ्/
2. **दंत्योष्ठय** :– जब विकार नीचे के ओठ और ऊपर के दाँतों से उत्पन्न होता है, तब उन स्वनों को दंत्योष्ठ्य व्यंजन कहते हैं। उदाहरण /फ/ /एफ/
3. **दंत्य** :– जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में दाँतों का योग होता है, उन्हें दंत्य व्यंजन कहते हैं। उदाहरण :– /त्/ /थ्/ /द्/ /ध्/
4. **वर्त्स्य** :– वर्त्स भाग से उच्चरित स्वन को वर्त्स्य व्यंजन कहते हैं। वर्त्स भाग को छूने से पता चलता है कि यह भाग खुरदुरा (कड़ा) होता है। उदाहरण :– /न्/ /ल्/ /र्/
5. **तालव्य** :– इसको कठोर तालु भी कहते हैं। जिह्वा नोक या जिह्वाग्र भाग से इन ध्वनियों के उच्चारण में सहायता ली जाती है। उदाहरण :– /च्/ /छ्/ /ज्/ /झ्/
6. **मूर्धन्य** :– इनके उच्चारण में जिह्वा मुड़कर ऊपर की ओर मूर्धा स्थान को छूती है। /ट्/ /ठ्/ /ड्/ /ढ्/ सभी मूर्धन्य व्यंजन हैं।
7. **कंठ्य** :– ये ध्वनियां जीभ के पिछले भाग के द्वारा कोमल तालु को छूने पर उत्पन्न होती है। /क्/ /ख्/ /ग्/ /घ्/ कंठ्य स्वन हैं।
8. **जिह्वामूलीय** :– ये स्वन जिह्वामूल या जिह्वापश्च भाग से उत्पन्न होती है। उदाहरण :– /क/ /ख/ /ग/

9. **स्वरयंत्रमुखी** :– स्वरयंत्रमुखी उन ध्वनियों को कहते हैं जो स्वरतंत्री के मुख से (ग्लाटिस Glottis) से उच्चरित होती हैं। उदारहण :– /ह्/

प्रयत्न का आधार

प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जाता है :–

1. **स्पर्श** :– उन स्वनों को कहते हैं जिनके उच्चारण में वाग्यंत्र के दो अवयवों का परस्पर स्पर्श होता है। स्पर्श में वाग्यंत्र के दोनों अवयव परस्पर स्पर्श के द्वारा अंदर से आने वाली वायु को रोक देते हैं और फिर उस वायु को जाने देते हैं। /प्/ /फ्/ /ब्/ /भ/ स्पर्श व्यंजन हैं।
2. **स्पर्श–संघर्षी** :– यहाँ मुखद्वार को बिल्कुल बंद करके रगड़ के साथ खोलना पड़ता है /च्/ /छ्/ /ज्/ /झ्/ स्पर्श–'संघर्षी व्यंजन हैं।
3. **अनुनासिक** :– नासिक्य व्यंजनों के उच्चारण में मुख–द्वार को बिल्कुल बंद करके खोला जाता है, किंतु साथ ही वायु का विमोचन नासिका विवर से भी होता है। उदाहरण :– /ङ्/ /ञ/ /ण्/ /न्/
4. **पार्श्विक** :– इन व्यंजन– ध्वनियों के उच्चारण में मुख–द्वार को बीच में बंद कर दिया जाता है, किंतु दोनों तरफ रास्ता खुला रहता है। उदाहरण :– /ल्/
5. **लुंठित** :– लुंठित व्यंजन–स्वन में मुखद्वार को जीभ की नोक से बहुत जल्द–जल्द बंद करके दो–तीन बार खोला जाता है। उदाहरण :– /र्/
6. **उत्क्षिप्त** :– उत्क्षिप्त वह व्यंजन–स्वन है जिसके उच्चारण में जीभ की नोक उल्टा कर तालु को कुछ दूर तक छू कर मुख द्वार को झटके के साथ खोला जाता है। उदाहरण /ड़/ढ़/
7. **संघर्षी** :– इन ध्वनियों के उच्चारण में मुख–द्वार को इतना संकरा किया जाता है कि हवा रगड़ खाकर निकले। उदाहरण :– /फ़/ /एफ़

अद्‌र्ध–स्वर

अद्‌र्ध–स्वर न पूर्णरूपेण स्वर हैं, न पूर्ण रूप से व्यंजनों की तरह स्वराघात ही वहन कर सकते हैं। इनके उच्चारण में मुख–द्वार को संकरा कर दिया जाता है कि रगड़ खाकर हवा बाहर निकलती है।

उदाहरण :– /व्/य्/

व्यंजनो का वर्गीकरण

प्रयत्न के आधार पर	स्थान के आधार पर 1 दवयोप्ठ्य	2 दंत्योप्ठ्य	3 दंत्य	4 वर्त्स्य	5 तालप्य	6 मूर्द्धन्य	7 कंठ्य	8 जिह्वामूलीय	9 स्वरयत्रामुखी
स्पर्श अघोष अल्प	प्	×	त्	×	×	ट्	क्	क़्	□
स्पर्श अघोष महा	फ्	×	थ्	×	×	ठ्	ख्	ख़्	×
घोष महा	क्	×	द्	×	×	ड्	ग्	ग़्	×
घोष अल्प	भ्	×	ध्	×	×	ढ्	घ्		×
महा	×	×	×	×	×	×	×	×	×
स्पर्श– अघोष अल्प	×	×	× ×	×	× छ	×	×	×	×
संघर्षी महा	×	×	×	×	छ्	×	×	×	×
मघोष अल्प	×	×	×	×	ज्	×	×	×	×
महा	×	×	×	×	झ्	ण्	ङ्	×	×
अनुनासिकअल्प	म्	×	×	न्	ञ्	×	×	×	×
(घोष) महा	(न्ह)	×	×	(रह्)	×	×	×	×	×
पार्श्विकअल्प	×	×	×	ल्	×	×	×	×	×
(घोष) महा	×	×	×	(ल्ह्)	×	×	×	×	×
लुंठित अल्प	×	×	×	र्	×	×	×	×	×
(घोष) महा	×	×	×	(रह्)	×	ड़्	×	×	×
उलिप्त अल्प	×	×	×	×	×	ढ़्	×	×	×
(घोष) महा	×	×	×	×	श्	×	×	×	×
अघोष अल्प	×	×	×	×	×	×	×	×	×
संघर्षी महा	×	फ़्	×	×	×	×	×	×	व्
संघोष अल्प	×	×	×	स	×	×	×	×	×
महा	×	×	×	×	×	×	×	×	×
अर्द्ध–स्वर	व्	×	×	×	य्	×	×	×	×

टिप्पणी :– कोष्ठक में रखी गई ध्वनियों के लिए कोई स्वतंत्र लिपि–चिन्ह नहीं है।

9.4 कठिन शब्द

1. पूर्णरूपेण
2. स्वरतंत्री
3. अघोष
4. विमोचन
5. अल्पप्राण
6. जिह्वाग्र
7. वाग्यंत्र

9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 व्यंजनों के वर्गीकरण पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 2 व्यंजन किसे कहते हैं, और इनका वर्गीकरण किस आधार पर होता है, स्पष्ट करें।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 3 स्थान के आधार पर व्यंजनों का वर्गीकरण करें।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 4 प्रयत्न के आधार पर होने वाले व्यंजनों के वर्गीकरण पर प्रकाश डालें।

उ. ____

____

____

____

9.6 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

____

स्वनिम (**Phonemics**)

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 स्वनिम (Phoneme) : परिभाषा, स्वरूप और भेद

10.3.1 स्वनिम की परिभाषा

10.3.2 स्वनिम का स्वरूप

10.3.3 स्वनिम के भेद

10.4 स्वनिम और संस्वन में भेद

10.5 कठिन शब्द

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.7 पठनीय पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप :

– स्वनिम के स्वरूप को समझ सकेंगे।

– स्वनिम के कितने भेद हैं, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

– स्वनिम और संस्वन में क्या भेद हैं, उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना

स्वानिमी/स्वनिम विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें स्वनिमों और उनसे संबंधित पूरी व्यवस्था पर विचार किया जाता है।

10.3 स्वनिम (**Phoneme**) : परिभाषा, स्वरूप और भेद

10.3.1 स्वनिम की परिभाषा

देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार 'मिलती–जुलती ऐसी ध्वनियों या ध्वनिगुणों का भावानयन स्वनिम कहलाता है, जो व्यवहार की दृष्टि से किसी विशेष भाषा में एक ही इकाई बनाएँ।'

'यदि हम किसी एक ध्वनि का उच्चारण दस बार करते हैं तो वस्तुतः यह उच्चारण दस भिन्न–भिन्न ध्वनियों का होता है। किन्तु यह भिन्नता इतनी अल्प होती है कि हम उसे पकड़ नहीं पाते।' उदाहरण के रूप में : यदि हम 'उलटा', 'ले' तथा 'ला' शब्दों में आई 'ल' ध्वनि के उच्चारण पर ध्यान दें तो हम पाएँगे कि 'उलटा' शब्द के उच्चारण में जिह्वा की नोक को ऊपर की ओर उलटाना पड़ता है, 'ले' शब्द में आए 'ल' के उच्चारण में जिह्वा वर्स्व की ओर थोड़ा आगे खिसक जाती है और 'ला' शब्द में आए 'ल' के उच्चारण में थोड़ा और आगे की ओर बढ़ जाती है। 'उलटा', 'ले' तथा 'ला' में आए 'ल' के उच्चारण स्थान में सूक्ष्म Hks gkssgq Hkh ge ,d lkekU; /ofu ^y* dksgh xzg.k djrsgSA lkekU; /ofu ^y* dksge y^{1}, 'उलटा' में आई 'ल' ध्वनि को ल^{2}, 'ले' में आए 'ल' को ल^{3} और 'ला' में आए 'ल' को ल^{4} के रूप में लिख सकते हैं। ल^{1}, ल^{2}, ल^{3} और ल^{4} आपस में मिलती जुलती ध्वनियां हैं। ल^{2}, ल^{3} और ल^{4} के उच्चारण स्थान की सूक्ष्म भिन्नता के बारे में हम बता सकते हैं, इनके अलग–अलग उच्चारण स्थान के बारे में बता सकते हैं, इसलिए हम कहते हैं कि इन तीनों 'ल' की सत्ता भौतिक है। ये तीनों भिन्न हैं, लेकिन हम इन्हें सामान्य ल के रूप में ग्रहण करते हैं, जिसे हमने ल^{1} के रूप में लिखा है। इस ल1 की सत्ता भौतिक नहीं है, इसकी सत्ता मानसिक है। ल^{2}, ल^{3} और ल^{4} जिस–जिस क्षेत्र से उच्चरित हुए, अगर उन्हें मिला कर एक विस्तृत क्षेत्र की कल्पना की जाए तो उस क्षेत्र में ऐसे असंख्य बिन्दु होंगे जहां से 'ल' ध्वनि के उच्चारण की संभावना हो सकती है। अर्थात् एक क्षेत्र या परिधि में असंख्य 'ल' उच्चरित हो सकते हैं। उच्चरित हो सकने वाली सभी 'ल' ध्वनियों का क्षेत्र हमारे मस्तिष्क में नहीं रह सकता। सुनने में हम सामान्य 'ल' ध्वनि का भावानयन करते हैं। इसीलिए हमने परिभाषा में यह कहा कि मिलती–जुलती ध्वनियों का भावानयन स्वनिम कहलाता है। स्वनिम का संबंध भाषा विशेष से होता। हिन्दी के 'क' और अंग्रेजी के 'K' को हम एक ही स्वनिम नहीं मान सकते।

ल^{2}, ल^{3} और ल^{4}... आपस में मिलती–जुलती ध्वनियां हैं। इन ध्वनियों में से किसी एक ध्वनि को प्रतिनिधि मान लिया जाता है। यह प्रतिनिधि 'ल' स्वनिम है और शेष ध्वनियों को इसके संस्वन कहा जाता है। मान लीजिए हम ल^{2} को प्रतिनिधि मान लेते है, ऐसी स्थिति में ल^{3}, ल^{4}... आदि ल^{2} के संस्वन या उपस्वन हैं। मिलती–जुलती ध्वनियां कहने का तात्पर्य यह है कि इनमें समानता होती है। यह समानता स्थान या प्रयत्न के आधार पर होती है।

10.3.2 स्वनिम का स्वरूप

स्वनिम के स्वरूप को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। ब्लूम फील्ड और डेनियल जोन्स इसे भौतिक इकाई मानते हैं। कुर्तिन तथा प्राग स्कूल के कुछ भाषाशास्त्री इसे मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं। प्रो. ट्वाडेल स्वनिम को अमूर्त काल्पनिक इकाई मानते हैं। कुछ विद्वान इसे बीजगणितीय इकाई मानते हैं। वस्तुतः स्वनिम को अमूर्त

काल्पनिक इकाई/भावानीत (Abstractional Fictitious unit) इकाई मानना ही उपयुक्त है क्योंकि जिन मिलती–जुलती ध्वनियों को हम स्वनिम के रूप में ग्रहण करते हैं वह ग्रहण भावानयन के रूप में होता है।

10.3.3 स्वनिम के भेद

स्वनिम के दो भेद होते हैं– खंड्य (Segmental) और अखंड्य (Supra segmental).

खंड्य स्वनिम – जिन ध्वनियों को अलग–अलग खंडित किया जा सकता है और उनका उच्चारण स्वतंत्र रूप में हो सकता है, उन्हें खंड्य स्वनिम कहते हैं, जैसे 'कमल' शब्द में 'क', 'म' और 'ल' का स्वतंत्र उच्चारण किया जा सकता है और 'कमल' शब्द के 'क', 'म' और 'ल' के रूप में अलग–अलग खंड किए जा सकते हैं।

खंड्य स्वनिम दो प्रकार के होते हैं – स्वर स्वनिम : अ, इ, उ आदि।

व्यंजन स्वनिम : क, च, प, ट, त आदि।

अखंड्य स्वनिम – जिन स्वनिमों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण न हो सके और न ही अलग–अलग खंडित किया जा सके उन्हें अखंड्य स्वनिम कहा जाता है। इसके पांच भेद हैं :

1. **बलाघात** : बलाघात फेफड़ों से बाहर आने वाली हवा की तीव्रता पर निर्भर होता है। बलाघात में किसी एक वर्ण या शब्द को बल सहित उच्चरित किया जाता है। उदाहरण :

   1. **रोको** मत जाने दो।
   2. **रोको मत** जाने दो।

वाक्य संख्या एक में अगर बल 'रोको' शब्द पर होगा तो इसका अर्थ होगा, रोक लीजिए, जाने मत दीजिए। वाक्य संख्या दो में अगर बल 'रोको मत' पर होगा तो अर्थ होगा : मत रोकिए, जाने दीजिए।

2. **अनुतान** (Pitch या Tone) : अनुतान स्वरतंत्रियों पर पड़ने वाले तनाव पर निर्भर होती है। यह शब्द और वाक्य दोनों स्तरों पर मिलती है।

   उदाहरण :

   1. वह पास हो गई।
   2. वह पास हो गई!
   3. वह पास हो गई?

वाक्य संख्या एक को अगर सामान्य रूप से उच्चरित करेंगे तो पास होने की सूचना प्रेषित होगी। इसी वाक्य को टोन बदल कर उच्चरित करने से आश्चर्य या प्रश्न का भाव भी प्रदर्शित किया जा सकता है।

3. **दीर्घता** (Length) : इसे मात्रा भी कहा जाता है। स्वरों में मात्रा के भेद के कारण अर्थ में भेद उत्पन्न हो जाता है। जैसे :

   1. मुझसे पहिया जितना चला, उतना चला दिया।
   2. अब मैं चला।

वाक्य संख्या एक में 'चला' शब्द के 'आ' के उच्चारण में हवा की अधिक मात्रा के कारण 'चला' शब्द का अर्थ हुआ घुमाना या गति में लाना। दूसरे वाक्य में 'चला' का अर्थ है जाने की क्रिया।

'बला' और 'बल्ला' शब्द में भिन्न अर्थ का कारण 'ल' व्यंजन की दीर्घता है।

4. **अनुनासिकता** (Nasalisation) : अगर हम निम्नलिखित दो वाक्यों के अर्थ की ओर ध्यान दें:

1. मैंने अपनी सास को देखा।
2. तो मेरी साँस ही रुक गई।

तो हम पाएँगे कि वाक्य संख्या एक में 'सास' का अर्थ है पति की मां। दूसरे वाक्य में 'सास' शब्द में 'आ' के अनुनासिक होने के कारण अर्थ में बदलाव आ गया है।

5. **संगम** (Juncture) : शब्दों और वाक्यों की कुछ ध्वनियों के बीच यति का प्रयोग करने से अर्थ में अंतर आ जाता है, जैसे :

1. डाक्टर ने मुझे पीली दवाई दी। (पीला रंग)
2. मैंने वह दवाई पी ली। (पीने की क्रिया)

स्वनिम का भेद केन्द्रीय स्वनिम और परिधीय स्वनिम के रूप में भी किया जाता है। जो स्वनिम अर्थ भेदक और व्यतिरेक वितरण में होते हैं, उन्हें केन्द्रीय (Core) या मुख्य स्वनिम कहते हैं और जिनका प्रयोग कम लोगों द्वारा होता है और जो सीमित शब्दों में आते हैं या सीमित परिस्थितियों में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें परिधीय (Peripheral) या गौण स्वनिम कहा जाता है। जैसे क़, ख़, ग़, ज़, फ़।

10.4 स्वनिम और संस्वन में भेद

स्वनिम	संस्वन
1. स्वनिम किसी भाषा की समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि एक ही ध्वनि अनेक प्रकार से उच्चरित होती है तो स्वनिम एक ही होगा।	**1. संस्वन समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। यदि एक ही ध्वनि अनेक प्रकार से उच्चरित हो तो स्वनिम तो एक ही होगा, परन्तु संस्वन अनेक हो सकते हैं।**
2. स्वनिम की सत्ता मानसिक होती है।	**2. संस्वन की सत्ता भौतिक होती है।**
3. यदि स्वनिम और संस्वन को एक परिवार माना जाए तो स्वनिम को परिवार का मुखिया कहा जाएगा।	**3. यदि स्वनिम और संस्वन को परिवार माना जाए तो संस्वनों को परिवार का सदस्य माना जाएगा।**

4. स्वनिम अर्थ भेदक होते हैं। जैसे 'आल' के पूर्व 'क' स्वनिम रख दिया जाए तो बनेगा 'काल'। यदि 'आल' के पहले 'ग' स्वनिम रख दिया जाए तो शब्द बनेगा 'गाल'। काल और गाल के अर्थ में अन्तर है। यह अन्तर 'आल' के पूर्व 'क' या 'ग' स्वनिम के आने के कारण है।	4. संस्वन अर्थ भेदक नहीं होते।
5. किसी भी भाषा में स्वनिम महत्वपूर्ण होते हैं।	5. संस्वन महत्वपूर्ण नहीं होते।
6. स्वनिम व्यतिरेकी वितरण में आते हैं।	6. संस्वन परिपूरक वितरण में आते हैं।
7. स्वनिम अननुमेय होते हैं। अर्थात् यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि-कौन सा स्वनिम कहां आएगा।	7. संस्वन अनुमेय होते हैं।

10.5 कठिन शब्द

1. वर्स्व
2. परिधि
3. भावानयन
4. अमूर्त
5. भौतिक
6. परिपूरक
7. अनुमेय
8. अननुमेय
9. बलाघात
10. अनुतान

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 स्वनिम किसे कहते हैं?

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 2 स्वनिम को परिभाषित करते हुए इसके स्वरूप तथा भेद पर प्रकाश डालिए।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 3 स्वनिम तथा संस्वन का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ. ____

____

____

____

10.7 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

स्वनिम विश्लेषण पद्धति

11.0 रूपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 स्वनिम विश्लेषण पद्धति

11.4 शब्द, पद, धातु और प्रतिपादिक : परिभाषाएँ

11.5 कठिन शब्द

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.7 पठनीय पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप स्वन, स्वनिम की विश्लेषण पद्धति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

11.2 प्रस्तावना

स्वनिम विश्लेषण किसी भाषा में पाए जाने वाले स्वनिमों के निर्धारण की प्रक्रिया है। जिसके माध्यम से उस भाषा की स्वनिम व्यवस्था का निरूपण किया जाता है।

11.3 स्वनिम विश्लेषण पद्धति

सामग्री संकलन – किसी भी भाषा–बोली के अध्ययन के लिए सामग्री संकलित की जाती है। भाषा के पुराने शब्दों का संग्रह प्राचीन साहित्य से किया जाता है, जबकि जीवित भाषा–बोली के शब्दों के विश्लेषण के लिए उस भाषा के बोलने वाले व्यक्ति–व्यक्तियों से सुनकर शब्दों या वाक्यों का संकलन किया जाता है।

सूचक – अध्ययन की जाने वाली भाषा को जिस व्यक्ति से सुना जाता है उसे सूचक कहते हैं। सूचक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसकी मातृभाषा अध्ययन की जाने वाली भाषा हो या वह उस भाषा का अच्छा ज्ञाता हो और भाषाशास्त्री से संप्रेषण के लिए भी उचित भाषा का ज्ञान उसे हो।

ध्वन्यात्मक लेखन – सामग्री संकलन के समय जिन शब्दों को सूचक से सुना जाता है उन्हें ध्वन्यात्मक लेखन (Phonetic Transcription) की सूक्ष्म प्रतिलेखन की पद्धति से लिखा जाता है। लिखते समय यह भी लिखना पड़ता है कि कौन–सी ध्वनि स्वर है और कौन–सी व्यंजन। अगर स्वर है तो किस प्रकार का स्वर है : संवृत है, विवृत है, अग्र है, मध्य है या पश्च है, गोली कृत या अगोलीकृत है, आदि। यदि व्यंजन है तो किस प्रकार का है : स्थान भेद से ओष्ठ्य है, दन्त्य है, वर्त्स्य है, आदि, प्रयत्न भेद से स्पर्श है, स्पर्श–संघर्षी है, पार्श्विक है आदि। स्वरतंत्रियों के आधार पर घोष है या अघोष, प्राणत्व के आधार पर अल्पप्राण है या महाप्राण, मात्रा के आधार पर ह्रस्व है या दीर्घ।

स्वनिमों को छांटना (विश्लेषण)

स्वनिमों के विश्लेषण के लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जाती है :

(क) **संकलित सामग्री को क्रमबद्ध लगाना** – प्रत्येक ध्वनि से आरंभ होने वाले शब्दों की अलग से सूची बनाई जाती है और यह भी नोट किया जाता है कि क्या कोई ध्वनि किसी विशेष ध्वनि के साथ ही आती है। इस प्रकार की ध्वनि के संबंध में यह भी नोट किया जाता है कि वह शब्द के आरंभ में आती है, मध्य में या अंत में या तीनों ही स्थलों में। आरंभ, मध्य और अंत में आने वाली प्रत्येक ध्वनि की सूची बनाई जाती है।

(ख) **तुलनात्मक अध्ययन** – सूचियां बनाने के पश्चात तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। समान परिस्थिति में आने वाली ध्वनियों को अलग किया जाता है। ऐसी ध्वनियों वाले शब्दों के निम्नतम युग्म अलग किए जाते हैं। निम्नतम युग्म से तात्पर्य है जिन दो शब्दों की ध्वनियों में केवल एक ही ध्वनि का अन्तर हो जैसे 'काम' और 'राम' में केवल 'क' या 'र' का अन्तर है।

(ग) **स्वनिमों का वर्गीकरण** – वितरण के आधार पर यह देखा जाता है कि कौन–सी ध्वनि स्वनिम है और कौन–सी संस्वन।

1. **व्यतिरेकी वितरण** – व्यतिरेक का अर्थ है विरोध। जिस परिस्थिति में एक ध्वनि आती है, अगर उसी परिस्थिति में दूसरी ध्वनि आकर अर्थ भेद कर दे तो इस प्रकार के वितरण को व्यतिरेकी वितरण कहा जाता है। जैसे 'पल' और 'फल' में 'प' और 'फ' दोनों एक ही परिस्थिति में (अर्थात् 'ल' ध्वनि के पूर्व) आए हैं। इस परिस्थिति में आ कर उन्होंने अर्थ भेद कर दिया है। एक परिस्थिति में आने और अर्थ भेद कर पाने के कारण 'प' और 'फ' को अलग–अलग स्वनिम माना जा सकता है। यह देखना भी अपेक्षित है कि समान परिस्थिति में 'प' और 'फ' ध्वनियां शब्द के मध्य और/या अन्त में आकर अर्थ भेद कर पाती हैं या नहीं।

2. पूरक या परिपूरक वितरण – जिस परिस्थिति में एक ध्वनि आती है उसी परिस्थिति में कोई दूसरी ध्वनि न आए। इस प्रकार के वितरण को परिपूरक वितरण कहा जाता है। परिपूरक वितरण में आने वाली ध्‍वनियां संस्वन होती हैं। अगर हम एक बार बोलें 'चल' दूसरी बार फिर बोलें 'चल'। 'च' और 'ल' के उच्चारण स्थान में अल्प भेद आने पर भी अर्थ में अन्तर नहीं आता। इस प्रकार का वितरण पूरक है।

3. मुक्त वितरण – इस प्रकार के वितरण में जिस परिस्थिति में एक ध्वनि आती है उसी प्रकार की परिस्थिति में दूसरी ध्वनि भी आ जाती है लेकिन अर्थ भेद नहीं कर पाती, जैसे 'दीवार' और 'दीवाल' शब्दों में 'र' और 'ल' अर्थ भेद नहीं कर पा रहे।

4. संदिग्ध युग्म – संकलित सामग्री में से हमें इस प्रकार के निम्नतम युग्म प्राप्त हो सकते हैं जिनकी उस ध्वनि के बारे में यह संदेह होता है कि वह स्वनिम है या नहीं, जो निम्नतम युग्म बनने का कारण होती है। जैसे : 'दीवार' और 'दीवाल' निम्नतम युग्म हैं। यहां 'र' और 'ल' को ले कर संदेह है कि वे स्वतंत्र स्वनिम हैं या नहीं।

11.4 शब्द, पद, धातु और प्रतिपादिक : परिभाषाएँ

शब्द : सार्थक ध्वनिसमूह को शब्द कहा जाता है। शब्द मूल रूप होते हैं। शब्द के तीन भेद माने जाते हैं : (क) रूढ़ – ऐसे शब्द जिनमें मूल रूप और प्रत्यय को स्पष्ट रूप से अलग नहीं किया जा सकता रूढ़ कहलाते हैं। जैसे : रत्न, नूपुर, स्थूल आदि। (ख) यौगिक – जो प्रकृति और प्रत्यय के योग से बने हैं, जैसे : धनवान, भौतिक, कर्त्ता आदि। (ग) योगरूढ़ – जो शब्द यौगिक होते हुए भी किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं, वे योगरूढ़ कहलाते हैं, जैसे : पंकज आदि।

पद : शब्द को वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बना लेने पर उसे पद कहा जाता है। जैसे : 'वह जाता है।' वाक्य में 'जा' मूल रूप के साथ 'ता' प्रत्यय लगा कर 'जाता' बनाया गया है। यहां 'जाता' पद है।

धातु – किसी शब्द का मूल अर्थवाही तत्व धातु कहलाता है, जैसे चल, नमक आदि।

प्रातिपादिक – देवी शंकर द्विवेदी के अनुसार धातु, धातु–समूह अथवा धातु–प्रत्यय के ऐसे अनुक्रम को प्रातिपादिक कहा जाता है जिसमें प्रत्ययों का योग होना हो। जैसे 'सुन्दर' शब्द में 'ता' का योग संभव है, इसलिए 'सुन्दर' शब्द प्रातिपादिक है।

11.5 कठिन शब्द

1. सूचक
2. मातृभाषा
3. प्रतिलेखन
4. पार्श्विक
5. युग्म

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 स्वनिम विश्लेषण पद्धति पर प्रकाश डालें।

उ. ____

____

____

____

प्रश्न 2 वितरण के आधार पर स्वनिम और सस्वन की पहचान कैसे की जाती है ?

उ. ____

____

____

____

11.7 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

____

मर्फिम : परिभाषा और भेद

12.0 रूपरेखा

12.1 उद्‌देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 मर्फिम : परिभाषा और भेद

12.3.1 मर्फिम के भेद

12.4 कठिन शब्द

12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.6 पठनीय पुस्तकें

12.1 उद्‌देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप मर्फिम का पूर्ण परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

12.2 प्रस्तावना

व्याकरण के दो अंग हैं– मर्षविज्ञान और वाक्यविज्ञान। मर्ष विज्ञान में शब्दों के गठन का विवेचन किया जाता है तथा वाक्य–विज्ञान में वाक्यों–वाक्यांशों के संघटक तत्वों का विवेचन होता है।

12.3 मर्फिम : परिभाषा और भेद

मर्फिम : देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार मर्फिम कुछ मर्षों का भावानयन है। यह लघुतम अर्थयुक्त इकाई है, किन्तु यह अर्थ इकाई नहीं है। इसका सम्बन्ध भाषा के रूप पक्ष से भी है और अर्थ पक्ष से भी। अगर हम 'रसोईघर' शब्द के टुकड़े करें तो पहले हमें दो टुकड़े प्राप्त होंगे – 'रसोई' और 'घर'। ये दोनों टुकड़े सार्थक हैं। अगर इन के और टुकड़े किए जाएँ तो हमें वर्ण प्राप्त होंगे या निरर्थक टुकड़े। 'रसोई' और 'घर' दोनों मर्फिम हैं। मर्फिम को { } के बीच लिखा जाता है। जैसे {रसोई}, {घर}।

12.3.1 मर्षिम के भेद

मर्षिम को तीन दृष्टियों से देखा जाता है। (क) रचना की दृष्टि से (ख) अर्थ की दृष्टि से। (ग) खंडीकरण की दृष्टि से।

(क) रचना की दृष्टि से मर्षिम चार प्रकार के होते हैं :

1. **मुक्त मर्षिम** : जो किसी अन्य मर्षिम से संयुक्त हुए बिना वाक्य में या वाक्य के रूप में प्रयुक्त हो सकने में समर्थ हों उन्हें मुक्त मर्षिम कहा जाता है। जैसे {चल}, {कर}, {सुन्दर} आदि।

2. **बद्ध मर्षिम** – जो मर्षिम किसी अन्य मर्षिम से संयुक्त हुए बिना प्रयुक्त नहीं हो सकते हैं वे बद्ध मर्षिम कहलाते हैं, जैसे {–ता}, {त्व}, {सु–} आदि। बद्ध मर्षिम के दो मुख्य भेद हैं – (I) शब्द साधक मर्षिम (Derivative) – ये धातु या प्रातिपदिक से जुड़कर नए शब्द बनाते हैं, जैसे 'कृ' धातु के साथ जुड़ कर 'कारक' बनता है। (2.) रूपसाधक मर्षिम (Inflected) – जो प्रत्यय धातु या प्रातिपदिक के साथ जुड़कर कारक, लिंग, वचन, काल आदि बनाते हैं, वे रूपसाधक मर्षिम हैं। जैसे 'ई'। लड़क+ई = लड़की।

3. **अर्धबद्ध मर्षिम** – ये मर्षिम मुक्त और बद्ध दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं, जैसे {गृह} को स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है और {स्वामी} के साथ जोड़कर भी – गृहस्वामी।

4. **मिश्र मर्षिम** – ऐसे मर्षिमों में मुक्त और बद्ध दोनों रूप मिले होते हैं, जैसे बालक+स = बालकः।

(ख) अर्थ की दृष्टि से मर्षिम के दो भेद हैं :

1. **अर्थदर्शी मर्षिम (अर्थ तत्व)** – ये मर्षिम अर्थ का बोध कराते हैं और मुक्त मर्षिम के रूप में मिलते हैं, जैसे : {पढ़}, {चल} आदि।

2. **सम्बन्धदर्शी मर्षिम (सम्बन्ध तत्व)** – ये अर्थबोधक न होकर संज्ञा, क्रिया आदि में सम्बन्ध का बोध ा कराते हैं अर्थात् ये कारक, लिंग, वचन, काल और पुरुष का बोध कराते हैं और बद्ध मर्षिम के रूप में प्राप्त होते हैं। ये नौ प्रकार के हैं :

I. शून्य तत्व – शून्य तत्व से अभिप्राय यह है कि शब्द अपने मूल रूप में रहते हुए व्याकरण के सम्बन्ध ा को बताते हैं। जैसे 'वह उठ गया' वाक्य में 'उठ' अपने मूल रूप में है।

II. स्वतन्त्र शब्द – स्वतन्त्र शब्द भी सम्बन्ध तत्व का काम करते हैं, जैसे कारक चिह्न To, from, in आदि। हिन्दी में ने, को, से आदि।

III. पद क्रम – पदों का निश्चित क्रम भी संबंध तत्व का काम करता है, जैसे Ram killed Ravan और Ravana killed Ram. राम आया–आया राम, राम गया – गयाराम (दलबदलू)।

IV. द्विरुक्ति – शब्द के अंश की आवृति सम्बन्ध तत्व का कार्य करती है, जैसे पठ > पपाठ (पढ़ा)। खटखटाना आदि।

V. आगम – शब्द के आदि, मध्य या अंत में सम्बन्ध तत्व जुड़ जाते हैं, जैसे 'शील' से पूर्व सु = सुशील।

VI. आंतरिक परिवर्तन – शब्दों के भीतर परिवर्तन होने से अर्थ में अन्तर आ जाता है, जैसे गुण > गौण। अंग्रेजी में Sing > Sang

VII. आदेश – आदेश का अर्थ है परिवर्तन। इसमें मूल शब्द के बदले दूसरे शब्द का प्रयोग होता है। हिन्दी में जा > गया। 'या' धातु से 'जा' बना है। जबकि 'गया' गम, धातु से बना है। इस प्रकार यह धातु का परिवर्तन है।

VIII. न्यूनत्व – इसमें लोप कार्य होता है अर्थात् कुछ ध्वनियों को निकाल दिया जाता है, जैसे दा+सन् = दिदासति के स्थान पर दित्सति (देना चाहता है)।

IX. स्वराघात और लय – स्वराघात, लय और तान भी सम्बन्धतत्व का कार्य करते हैं। जैसे : (1) वह चला (2) मशीन चला। दूसरे वाक्य के 'चला' के 'आ' पर बल देने पर अर्थ बदल जाता है।

(ग) खंडीकरण की दृष्टि से मर्षिम दो प्रकार के हैं –

I. खंड मर्षिम – इस प्रकार के मर्षिमों को पृथक किया जा सकता है। जैसे सुन्दरता = सुन्दर+ता।

II. अखंड मर्षिम – ऐस मर्षिम जिन्हें पृथक न किया जा सके। बलाघात, सुर आदि अखंड मर्षिम हैं।

संमर्ष – जो मर्ष किसी मर्षिम के सदस्य होते हैं, वे उस मर्षिम के संमर्ष कहे जाते हैं। संमर्ष को / के बीच लिखा जाता है।

प्रत्यय – धातु या प्रातिपादिक में जुड़ने वाले गौण तत्व प्रत्यय कहलाते हैं। धातु से पहले जुड़ने वाले पूर्व प्रत्यय कहलाते हैं। इनके लिए उपसर्ग शब्द का भी प्रयोग होता है। जैसे 'वि–'। शिष्ट के पूर्व जोड़ने पर 'विशिष्ट' शब्द बन जाता है। धातु या प्रातिपादिक के अन्त में जुड़ने वाले प्रत्यय परप्रत्यय कहलाते हैं। जैसे–'ता'। चल के साथ जुड़ कर शब्द बनता है 'चलता'। धातु या प्रातिपादिक के मध्य जुड़ने वाले प्रत्यय अन्तर्प्रत्यय कहलाते हैं। जैसे 'इ', 'आ' आदि। कतब के मध्य 'इ' और 'आ' जुड़ने पर शब्द बनेगा 'किताब'।

12.4 कठिन शब्द

1. ध्वनिसमूह
2. रूढ़
3. नूपुर
4. योगिक

5. खंडीकरण

6. प्रातिपदिक

7. द्विसक्ति

12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 मर्षिम किसे कहते हैं ?

उ. ——

——

——

——

——

——

प्रश्न 2 मर्षिम विज्ञान पर चर्चा करें।

उ. ——

——

——

——

——

——

प्रश्न 3 मर्षिम को परिभाषित करते हुए इसके भेदों पर चर्चा करें।

उ. ——

——

——

——

——

——

12.6 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

व्याकरणिक कोटियों का परिचय

13.0 रूपरेखा

13.1 उद्‌देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 व्याकरणिक कोटियों का परिचय

13.4 समीपी संघटक

13.5 कठिन शब्द

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.7 पठनीय पुस्तकें

13.1 उद्‌देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप–

– हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

– वाक्य तथा इसके भेदों से परिचित हो सकेंगे।

– वाक्य के समीपी संघटक का बोध हो पाएगा।

13.2 प्रस्तावना

व्याकरण उस शास्त्र का नाम है जिसके द्वारा हम किसी भाषा के शुद्ध बोलने, लिखने तथा पढ़ने का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। देवेन्द्र नाथ शर्मा ने व्याकरणिक कोटियों को परिभाषित करते हुए लिखा है कि

व्याकरणिक कोटियों का उद्देश्य भाषा में अभिव्यंजना संबंधी सूक्ष्मता और निश्चयात्मकता लाना है। प्रत्येक भाषा के स्वर व्यंजनों का सही उच्चारण कर वाक्यादि विन्यास का ज्ञान व्याकरण ही कराता है। हिन्दी भाषा का भी अपना विशिष्ट व्याकरण एवं उसकी कोटियां हैं।

13.3 व्याकरणिक कोटियों का परिचय

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार 'कई वाग्भागों के अन्तर्गत आने वाले प्रातिपादिकों को प्रयोग का सामर्थ्य अर्जित करने के लिए कुछ वर्गबद्ध बंधन स्वीकार करने पड़ते हैं। ये बंधन व्याकरणिक कोटियां हैं।' व्याकरणिक कोटियां प्रत्येक भाषा में होती हैं। हिन्दी की व्याकरणिक कोटियां निम्न हैं :

1. लिंग – यह व्याकरणिक कोटि सज्ञांओं में व्यापक रूप से पाई जाती है। लिंग दो प्रकार के हैं– प्राकृतिक और व्याकरणिक। भाषा के सन्दर्भ में व्याकरणिक लिंग ही प्रमुख हैं। नर–मादा के रूप में प्राकृतिक लिंग नहीं। कुछ भाषाओं में एक दर्जन से अधिक लिंग हैं। हिन्दी में दो लिंग हैं – स्त्रीलिंग और पुल्लिंग। लिंग का भाव प्रकट करने के लिए कुछ शब्दों में मर्षिम का योग करना पड़ता है। जिस व्याकरणिक कोटि में यह प्रवृत्ति मिलती है, उसे रूपायित कोटि कहते हैं। हिन्दी में स्त्रीलिंग का भाव व्यक्त करने के लिए प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे /–ई/ या /–आ/ आदि का : /लड़क–/+/–ई/= लड़की, /बाल–/+/–आ/= बाला। अंग्रेजी में स्वतंत्र शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है, जैसे He, Her, He goat, She goat.

अगर लिंग का भाव व्यक्त करने के लिए मर्षिम का योग न होना हो तो ऐसी व्याकरणिक कोटि को चयनात्मक कोटि कहा जाता है। जैसे पुल्लिंग शब्द – कोट, ग्रंथ, कान, आदि। स्त्रीलिंग शब्द – चोट, पुस्तक, टाँग, नाक आदि।

वाक्य व्यवहार में हिन्दी का लिंग कुछ विशेषणों और क्रियाओं को प्रभावित करता है, जैसे 'अच्छा लड़का गया'। 'अच्छी लड़की गई'।

2. वचन – इस व्याकरणिक कोटि का सम्बन्ध संख्या से है। हिन्दी और अंग्रेजी में दो वचन मिलते हैं – एकवचन तथा बहुवचन। हिन्दी में बहुवचन बनाने के लिए, एँ, इयाँ आदि प्रत्ययों का योग होता है, जैसे –

एकवचन	**बहुवचन**
लड़के	लड़कियाँ
लता	लताएँ

3. पुरुष – यह सर्वनाम नामक वाग्भाग में मिलने वाली कोटि है। पुरुष तीन हैं – उत्तम, मध्यम और अन्य। पुरुष के आधार पर क्रिया के रूपों में परिवर्तन होता है, जैसे उत्तम पुरुष में – मैं जाता हूँ। मध्यम पुरुष में – तुम जाते हो।

हिन्दी में उत्तम पुरुष 'हम' का प्रयोग वक्ता अकेले अपने लिए भी करता है। किन्तु यह एकवचन नहीं है। गठन की दृष्टि से यह बहुवचन है।

मध्यम पुरुष 'तुम' और 'तू' का प्रयोग एकवचन और बहुवचन दोनों रूपों में होता है। गठन की दृष्टि से 'तुम' बहुवचन है। 'तू' का प्रयोग असम्मान में होता है और वह भी कभी–कभी, कहीं–कहीं।

अन्य पुरुष एकवचन 'वह', 'वो' का प्रयोग असम्मान में होता है। बहुवचन 'आप' का प्रयोग शिष्टाचार में उस व्यक्ति के लिए होता है जिससे बात की जा रही हो। किन्तु व्याकरणिक दृष्टि से यह मध्यम पुरुष न होकर अन्य पुरुष हैं।

4. कारक – संस्कृत में आठ कारक थे। हिन्दी में वाक्य के स्तर पर कुछ वाक्यों के अंशों का संबंध भिन्न–भिन्न प्रकार से क्रिया से जोड़ कर कारकों की कल्पना की जा सकती है। मर्षवैज्ञानिक स्तर पर गठन की दृष्टि से हिन्दी में तीन ही कारक हैं। जैसे –

	एकवचन	**बहुवचन**
सरल कारक	लड़का	लड़के
तिर्यक कारक	लड़के	लड़कों
सम्बोधन	लड़के	लड़को

उदाहरण : लड़का गया, लड़के गए

लड़के ने ढेला फेंका, लड़कों ने ढेले फेंके।

ओ लड़के, ओ लड़कों।

5. काल – यह क्रियाओं में मिलने वाली कोटि है। हिन्दी में काल तीन प्रकार के हैं – भूत, वर्तमान और भविष्य। काल को अभिव्यक्त करने के लिए हिन्दी के क्रियारूपों का रूप कम ही बदलता है। भविष्य में {–ग} मर्षिम का प्रयोग होता है जैसे : वह जाएगा।

प्रेरणार्थक रूप {–आ} या {–वा} लगा कर बनाए जाते हैं – करना > कराना, करवाना।

6. पक्ष – क्रियाओं में मिलने वाली यह कोटि हिन्दी में नहीं है। इसमें कार्य की पूर्णता–अपूर्णता और उसकी बारम्बारता पर बल होता है। रूसी भाषा में दो पक्ष मिलते हैं :

	पूर्ण	अपूर्ण
देना	दात्य	दवात्य

यहां "दात्य' शब्द के अपूर्ण पक्ष में प्रत्यय {–व–} मध्य में आ गया है।

7. वाच्य – यह व्याकरणिक कोटि क्रियाओं में मिलती है। इससे यह पता चलता है कि वाक्य में कर्ता ने वस्तुतः कोई क्रिया की है या वह उससे प्रभावित हुआ है। देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार वाच्य अधिकतर दो होते हैं –

(क)	कर्तृवाच्य	(ख)	कर्मवाच्य
	काटना		कटना

13.4 समीपी संघटक

ऐसे संघटक जो किसी समग्र संघटन अथवा उसके अन्तभूर्त लघु संघटनों की रचना के लिए उत्तरदायी होते हैं, समीपी संघटक कहलाते हैं। समीपी संघटकों में परस्पर अधिक निकट का सम्बन्ध होता है, जो अर्थ की स्वाभाविकता सुरक्षित रखते हैं। उदाहरण के रूप में हम एक वाक्य लेते हैं –

मैं हिन्दी विभाग में जाती हूँ।

यह सम्पूर्ण वाक्य एक संघटन है इसके दो समीपी संघटक हैं – 'मैं' तथा 'हिन्दी विभाग में जाती हूँ'। 'हिन्दी विभाग में जाती हूँ' के पुनः दो संघटक हैं – 'हिन्दी–विभाग' और 'मैं'। 'हिन्दी विभाग' के पुनः दो संघटक हैं – हिन्दी और विभाग। 'जाती हूँ' के दो संघटक हैं 'जाती' और 'हूँ'। इसे निम्न रूप में दिखाया जा सकता है :

<table>
<tr><td rowspan="5">मैं</td><td>हिन्दी</td><td>विभाग</td><td>में</td><td>जाती</td><td>हूँ</td></tr>
<tr><td colspan="2">हिन्दी विभाग</td><td>में</td><td>जाती</td><td>हूँ</td></tr>
<tr><td colspan="2">हिन्दी विभाग</td><td>में</td><td colspan="2" rowspan="2">जाती हूँ</td></tr>
<tr><td colspan="3">हिन्दी विभाग में</td></tr>
<tr><td colspan="5">हिन्दी विभाग में जाती हूँ</td></tr>
<tr><td colspan="6">मैं हिन्दी विभाग में जाती हूँ</td></tr>
</table>

उपर्युक्त उदाहरण में प्रत्येक संघटन के दो संघटक हैं। किसी–किसी संघटन में कईं संघटक हो सकते हैं। जैसे –

मैं	हिन्दी विभाग	पंजाबी–विभाग	और	डोगरी विभाग	में	जाती हूँ

संशय – देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार कभी–कभी किसी उच्चार के अर्थ के संबंध में संशय होने लगता है। समीपी घटकों के विश्लेषण से इस संशय के कारण पर प्रकाश पड़ता है और यह पता चलता है कि क्या भाषा स्वयं ही इस प्रकार के संशय के लिए उत्तरदायी है : उदाहरण के लिए : कच्चे केले और बेर। इस उच्चार के दो अर्थ हो सकते हैं। दोनों अर्थों के अनुसार समीपीघटक निम्न प्रकार से होंगे –

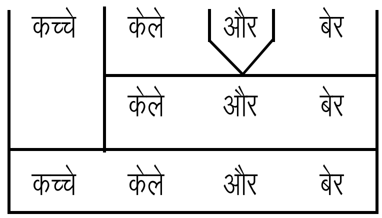

1. अर्थ – केले और कच्चे बेर

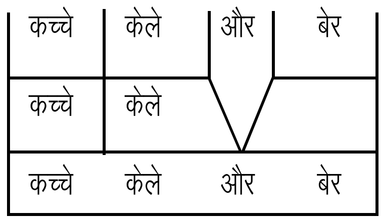

2. अर्थ – केले और कच्चे बेर

कई बार वाक्यों में साम्य होता है लेकिन उनके समीपी घटकों का विश्लेषण संदिग्ध नहीं होता। इसके लिए रूपायन उत्तरदायी है। जैसे –

लम्बे चिकने मोटे पत्तियों वाले पेड़।

लम्बे चिकने मोटे **पत्तियों वाले** पेड़।

लम्बे चिकने **मोटी पत्तियों वाले** पेड़।

लम्बे **चिकनी मोटे पत्तियों वाले** पेड़।

लम्बी चिकनी मोटी पत्तियों वाले पेड़।

समीपी घटक तीन प्रकार के होते हैं –

1. अविच्छिन्न (Continous) : जैसे मैं स्कूल जाती हूँ।

2. विच्छिन्न (Discontinous) : जैसे Is he going?

3. समकालिक (Simultaneous) – अनुतान समकालिक समीपी संघटक है।

क्योंकि यह साथ–साथ चलती है। जैसे –

वह दिल्ली गया! वह दिल्ली गया?

चिह्नक – किसी संघटन में कुछ घटक ऐसे भी हो सकते हैं जो प्रत्यक्ष रूप से किसी अर्थ को वहन नहीं करते। वे केवल एक संघटक का दूसरे संघटक के साथ संबंध बताते हैं। ऐसे घटक चिह्नक कहलाते हैं। उदाहरण के रूप में :

अजय, विजय, मोहन और सुशीला स्कूल जाते हैं।

उपर्युक्त संघटन में 'और' चिह्नक हैं जो यह बताता है कि इसके पहले के और इसके बाद के संघटक किसी संघटन के समीपी संघटक हैं।

13.5 कठिन शब्द

1. रूपायित
2. चयनात्मक
3. वाग्भाग
4. प्रेरणार्थक
5. बारम्बारता
6. संघटक
7. विच्छिन्न

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 व्याकरणिक कोटियों का परिचय दीजिए।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 2 हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों पर चर्चा करें।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

प्रश्न 3 समीपी संघटक क्या होते हैं? स्पष्ट करें।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

13.7 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह

—————

वाक्य परिभाषा और भेद

14.0 रूपरेखा

14.1 उद्‌देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 वाक्य : परिभाषा और भेद

14.4 निष्कर्ष

14.5 कठिन शब्द

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.7 पठनीय पुस्तकें

14.1 उद्‌देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप भाषा में वाक्य के महत्व, वाक्य तथा स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

वाक्य भाषा का महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि मानव अपने विचारों की अभिव्यक्ति वाक्यों द्वारा ही करता है। वाक्य के अभाव में वह अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। अतः वाक्य के बिना भाषा अधूरी है। जब हम शब्दों को व्याकरण के अनुरूप सार्थक कर्म में बांधते हैं तो वह वाक्य बनता है। वाक्य में विचार, विचारों का समन्वय तथा इनका सार्थक एवं समन्वित रूप में अभिव्यक्त होना, ये सब कार्य विचार और चिन्तन से संबद्ध हैं।

14.3 वाक्य : परिभाषा और भेद

वाक्य भाषा की वह सहज इकाई है जिसमें एक या अधिक शब्द (पद) होते हैं तथा जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हों या अपूर्ण, व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है; साथ ही उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम–से–कम एक समापिका क्रिया अवश्य होती है। जैसे :

प्रश्न – आप जाएंगे?

उत्तर – हां। 'हां' एक शब्द है जो वाक्य का कार्य भी कर रहा है। इसमें क्रिया नहीं है, परन्तु क्रिया की कल्पना किए बिना इसे समझा नहीं जा सकता। क्रिया या प्रत्यक्ष होगी या उसका अनुमान लगाया जाएगा।

वाक्य के भेद

वाक्य पांच प्रकार के हैं :

1. रचना–मूलक
2. आकृति–मूलक
3. अर्थ–मूलक
4. क्रिया–मूलक
5. शैली–मूलक

1. रचना मूलक (रचना की दृष्टि से)

रचना की दृष्टि से वाक्य तीन प्रकार के हैं :

(क) सरल (सामान्य) वाक्य

(ख) संयुक्त वाक्य

(ग) मिश्र वाक्य

(क) सरल वाक्य – इसमें एक उद्देश्य और एक विधेय होता है अर्थात् एक संज्ञा (सर्वनाम) और एक क्रिया। जैसे – वह पुस्तक पढ़ता है। हिन्दी आदि कुछ भाषाओं में सरल वाक्य पांच प्रकार के हैं –

(i) अकर्मकीय – जिनमें कर्म नहीं होता। जैसे : राम खाता है।

(ii) एककर्मकीय – जिनमें एक कर्म होता है – वह आम खाता है।

(iii) द्विकर्मकीय – 1. राम शाम को डंडे से मारता है।

2. मुकुल अलका को पत्र लिखता है।

(iv) कर्तृपूरकीय – आम मीठे हैं।

(v) कर्मपूरकीय – राम शाम को मूर्ख बनाता है।

(ख) संयुक्त वाक्य – ऐसा वाक्य संयुक्त वाक्य कहलाता है, जिसमें आंतरिक संरचना के स्तर पर दो या अधिक स्वतंत्र उपवाक्य होते हैं और उनमें परस्पर समानाधिकरण संबंध होता है, अर्थात् वे अर्थ की दृष्टि से परस्पर आश्रित नहीं होते। संयुक्त वाक्यों का वर्गीकरण अर्थ और संरचना की दृष्टि से किया जा सकता है।

I. अर्थगत वर्गीकरण

डॉ. सूरजभान सिंह के अनुसार संयुक्त वाक्य के उपवाक्य अर्थ की दृष्टि से परस्पर आश्रित नहीं होते लेकिन अर्थ की दृष्टि से हमेशा उनका स्तर समान नहीं होता। अगर केन्द्रीय अर्थ को भंग किए बिना उनमें क्रम विपर्यय की क्षमता हो तो उन्हें समस्तरीय कहा जा सकता है जैसे :

रात सुनसान थी और चारों ओर अंधेरा था।

क्रम विपर्यय – चारों और अंधेरा था और रात सुनसान थी।

इसके विपरीत प्रसंग–सूत्र से जुड़े होने के कारण कुछ संयुक्त वाक्यों में स्थान–विपर्यय नहीं हो सकता, जैसे–

चिड़ियाँ को गोली लगी और वह नीचे आ गिरी।

II. उपवाक्यों में परस्पर संबंधों के आधार पर संयुक्त वाक्यों के निम्नलिखित भेद संभव हैं:

(क) संयोजक संबंध – जब उपवाक्य दो या अधिक घटनाओं, स्थितियों, कार्यव्यापारों के संग्रह या संयोजन का भाव व्यक्त करते हैं तो उनके बीच संयोजन संबंध माना जाता है। इस संबंध को व्यक्त करने के लिए – और (तथा, एवं), फिर, ही नहीं ... बल्कि समुच्चयबोधक अव्यय प्रयुक्त होते हैं। जैसे –

(**I**) – वह थोड़ी देर रूकी, फिर चल दी।

(**II**) – उसने गाली ही नहीं दी बल्कि पीटा भी।

(ख) विभाजक संबंध – जब उपवाक्य दो या अधिक घटनाओं, स्थितियों या कार्यव्यापारों में से किसी एक के ग्रहण या दोनों के त्याग की सूचना देते हैं तब उनके बीच विभाजक संबंध माना जाता है। प्रमुख विभाजक समुच्चयबोध ाक अव्यय हैं – या (अथवा) य ...या, न ...न, नहीं तो (अन्यथा), चाहे ... चाहे, न कि, कि (या)। उदाहरण :

(**I**) मैं अपना वेतन मांग रहा हूँ न कि भीख।

(**II**) तुम जाते हो कि (या) नहीं।

(**III**) न वह मुझे जानता है, न उसे। (दोनों का त्याग)

(ग) विरोधवाची संबंध – जब उपवाक्य दो घटनाओं, स्थितियों या कार्यव्यापारों के बीच विरोध या विरोध ाभास की सूचना दें तब उनके बीच विरोधवाची संबंध होता है। इनमें स्थान विपर्यय संभव नहीं है। प्रमुख विरोध ावाची समुच्चयबोधक अव्यय हैं : लेकिन (किंतु; परन्तु, मगर, पर) बल्कि, प्रत्युत। उदाहरण–

(क) उसने उसके पैसे नहीं लौटाए बल्कि उससे कुछ पैसे और ले लिए।

(ख) वह उठा लेकिन लोगों ने उसे बिठा दिया।

(घ) **परिणामवाची संबंध** – जब उपवाक्य कार्य–कारण का बोध कराएं तब उनके बीच परिणामवाची संबंध माना जाता है। प्रमुख परिणामवाची समुच्चयबोधक अव्यय हैं – इसलिए, अतः, अतएव, सो। उदाहरण–

वह बीमार है इसलिए स्कूल नहीं जा सकता।

III. संरचनागत वर्गीकरण

संरचना की दृष्टि से संयुक्त वाक्यों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :

(**I**) **पूर्णांग संयुक्त वाक्य** – ऐसे वाक्यों में संयोजन की प्रक्रिया कार्य करती है। उपवाक्यों में किसी प्रकार का विकार नहीं होता उनके बीच केवल समुच्चयबोधक अव्यय होता है :

(क) जल्दी चले जाओ नहीं तो वह यहीं आ जाएगा।

(**II**) **अल्पांग संयुक्त वाक्य** – इस वर्ग के उपवाक्य के दूसरे वाक्य से समरूप या समानधर्मा अंश का लोप हो जाता है। यह लुप्त अंश प्रायः क्रिया पदबंध होता है। लोप के साथ इस वर्ग में संयोजन भी होता है। कहीं–कहीं 'लेकिन' वर्ग के अव्यय का लोप भी होता है। जैसे –

I) मां सो रही थी और बच्ची भी (सो रही थी)।

II) मैं आपको जानता हूँ (लेकिन) आप के लड़के को नहीं (जानता)।

III) आप कल आए थे या परसों (आए थे)?

III) संकुचित संयुक्त वाक्य – इस वर्ग के वाक्यों में संयोजन और लोप के साथ स्थानांतरण की प्रक्रिया होती है। दूसरे उपवाक्य का असमान अंश प्रथम वाक्य में स्थानांतरित हो जाता है। उदाहरण –

लोहा और सोना धातुएं हैं (संयुक्त कर्ता पदबंध)

ठेकेदार ने सभी मकान और पेड़ तोड़ डाले (संयुक्त कर्म पदबंध)

उल्लू दिन को सोता है और रात को जागता है। (संयुक्त विधेय)

दिल्ली और लंदन क्रमशः भारत और इंग्लैंड की राजधानियां हैं। (समानांतरसंयुक्त वाक्य)

नोट – अल्पांग वाक्य का कोई भी अंश संयुक्त पदबंध का निर्माण करने की क्षमता नहीं रखता। 'उल्लू दिन को सोता है और रात को जागता है' में संयुक्त विधेय है। साथ ही इसमें क्रिया पदबंध का लोप न हो कर कर्ता पदबंध का लोप है।

कामता प्रसाद गुरू के अनुसार जिस वाक्य में एक उद्देश्य के अनेक विधेय हों या अनेक उद्देश्यों का एक विधेय हो या अनेक उद्देश्यों के अनेक विधेय हों उसी को संकुचित संयुक्त वाक्य मानना उचित है।

(ग) मिश्र वाक्य – मिश्र वाक्य में कम–से–कम दो उपवाक्य होते हैं जिनमें से एक मुख्य/स्वतंत्र उपवाक्य होता है जिसमें मुख्य कथन होता है, दूसरा गौण/आश्रित उपवाक्य होता है जो कुछ समुच्चयबोधक अव्ययों (जो, कि, ताकि आदि) द्वारा मुख्य उपवाक्य से जुड़ा होता है। जैसे –

बाहर एक व्यक्ति खड़ा है जो पतंगे बेच रहा है।

प्रकार्य की दृष्टि से आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं :

(I) संज्ञा उपवाक्य – जो वाक्य में संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हैं उन्हें संज्ञा उपवाक्य कहते हैं। प्रायः इनके आरंभ में 'कि' का प्रयोग होता है लेकिन कुछ स्थितियों में इसका लोप भी हो सकता है और कुछ में प्रतिबंध भी, जैसे –

I) उसने कहा (कि) गाड़ी छूट गई ('कि' का ऐच्छिक लोप)

II) आप यहां के राजा हैं यह कौन नहीं जानता। ('कि' पर प्रतिबंध)

(II) विशेषण उपवाक्य – जो उपवाक्य संज्ञा की विशेषता बताते हैं उन्हें विशेषण उपवाक्य कहा जाता है। इनके प्रारंभ में प्रायः संबंधवाचक सर्वनाम 'जो' या इसके विकारी रूप 'जिस', 'जिन' आदि का प्रयोग होता है। जैसे–

(**I**) जो पैसे आपने मुझे दिए थे वे खर्च हो गए।

(III) क्रियाविशेषण उपवाक्य – जो उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बताते हैं उन्हें क्रियाविशेषण उपवाक्य कहते हैं। कभी–कभी ये विशेषण या क्रियाविशेषण की विशेषता बताते हैं, जैसे –

I) जब मैं कलकत्ते में था तो खुद खाना बनाता था।
('तब' क्रिया की विशेषता)

II) वह इतना कमजोर है कि चल भी नहीं सकता।
('न चल सकने योग्य' विशेषण की विशेषता)

III) वह इतनी जल्दी बोलता है कि कुछ समझ नहीं आता
('कुछ समझ न आने तक' क्रिया विशेषण की विशेषता)

2. आकृतिमूलक वर्गीकरण

सम्बन्धतत्व और अर्थतत्व के आधार पर वाक्य चार प्रकार के हैं –

(क) **अयोगात्मक** – ऐसे वाक्यों में संबंधतत्व और अर्थतत्व अलग–अलग रहते हैं। चीनी भाषा अयोगात्मक है। उदाहरण :

I) ता जेन (बड़ा आदमी)
जेन ता (आदमी बड़ा है।)

II) वो ता नी (मैं तुझे मारता हूँ)
नी ता वो (तू मुझे मारता है)

(ख) श्लिष्ट योगात्मक – ऐसे वाक्यों के शब्दों में संबंध तत्व और अर्थ तत्व को जोड़ने के कारण अर्थतत्व वाले भाग में कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है। सम्बन्धतत्व की झलक अलग मालूम पड़ती है, जैसे : वृक्षात पत्रम् अपतत् (पेड़ से पत्ता गिरता है।) कतल > कातिल।

(ग) अश्लिष्ट योगात्मक – ऐसे वाक्यों के शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय घनिष्ठता से मिले हुए नहीं होते उन्हें अलग–अलग देखा जा सकता है। जैसे 'सुन्दरता' में सुन्दर+ता

(घ) **प्रश्लिष्ट योगात्मक** – ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय पदों को अलग करना कठिन होता है, प्रायः पूरा वाक्य एक शब्द बन जाता है। अमरीका की चेरीकी भाषा में 'नाधोलिनिन' का अर्थ है 'हमारे पास नाव लाओ'। इसमें नातेन– लाओ, अमोखोल–नाव और निन = हम, शब्द हैं जिन्हें जोड़ कर यह वाक्य बनाया गया है।

3. **अर्थमूलक वर्गीकरण** – इस आधार पर वाक्य आठ प्रकार के हैं –

1.	विधि वाक्य	राम जाता है।
2.	निषेध वाक्य	राम नहीं जाता।
3.	प्रश्न–वाक्य	क्या राम जाता है?
4.	अनुज्ञा–वाक्य	राम! तुम जाओ!
5.	सन्देह–वाक्य	राम जाता होगा।
6.	इच्छार्थक वाक्य	तुम सौ साल जियो।
7.	संकेतार्थक वाक्य	यदि राम तेज दौड़ता तो प्रथम आ जाता।
8.	विस्मयार्थक वाक्य	देखो कितना बड़ा सांप है।

1. **क्रियामूलक वर्गीकरण – इस आधार पर वाक्यों के दो भेद होते हैं –**

(क) **क्रियायुक्त वाक्य** – लगभग सभी भाषाओं के वाक्यों में एक क्रिया रहती है। वाच्य के आधार पर क्रिया युक्त वाक्य तीन प्रकार के होते हैं – कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाव वाच्य। कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, जैसे : फल राम द्वारा खाया जाता है। भाववाच्य में क्रिया मुख्य होती है, कर्म नहीं होता जैसे : 'फल गिरता है।'

(ख) **क्रियाहीन वाक्य** – प्रचलन के आधार पर कई भाषाओं में क्रिया के बिना भी वाक्य होते हैं जैसे : इदं न मम गृहम्। प्रश्न वाक्य भी बिना क्रिया के हो सकते हैं, जैसे : कस्मात त्वम? (कहां से?)

मुहावरों में क्रियाहीन वाक्यों का प्रयोग होता है, जैसे – यथा राजा तथा प्रजा। विज्ञापनों, समाचार पत्र आदि के शीर्षकों में भी क्रिया नहीं होती जैसे – नक्कालों से सावधान।

2. **शैली–मूलक – शैली के आधार पर तीन प्रकार के वाक्य होते हैं–**

(क) **शिथिल वाक्य** – ऐसे वाक्य अलंकृत या मुहावरेदार नहीं होते। वक्ता या लेखक मनमाने ढंग से बात करता है, जैसे : एक थी रानी कुन्ती, उसके पांच पुत्तर, एक का नाम युधिष्ठिर, एक का नाम भीम, एक का नाम कुछ और, एक का नाम मैं भूल गया।' यह कथावाचकों की शैली है।

(ख) **समीकृत वाक्य** – ऐसे वाक्यों में संतुलन और संगति का ध्यान रखा जाता है। जैसे – कहां हंस कहां बगुला, कहां राजा, कहां रंक! कहां शेर कहां सुअर! समीकृत वाक्य सन्तुलन आदि के कारण लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो जाते हैं।

(ग) **आवर्तक वाक्य** – ऐसे वाक्यों में कथनीय वस्तु अंत में दी जाती है। 'यदि', 'अगर' जैसे शब्द लगाकर वाक्यों को लम्बा किया जाता है। जैसे – यदि सुख चाहिए, यदि शांति चाहिए, यदि कीर्ति चाहिए, यदि अमरता चाहिए तो विद्याध्ययन में मन लगाओ।

14.4 निष्कर्ष

पदों या सार्थक शब्दों का वह सार्थक समूह, जिससे वक्ता की कथनी का मूल भाव अर्थ सहित स्पष्ट होता है, वाक्य कहलाता है। इसे रचना, आकृति, अर्थ, क्रिया और शैली के आधार पर विभक्त किया जाता है।

14.5 कठिन शब्द

1. पद
2. परोक्ष
3. विधेय
4. अकर्मकीय
5. एककर्मकीय
6. द्विकर्मकीय
7. विपर्यय
8. समुच्चयबोधक
9. लोप
10. प्रतिबंध

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 वाक्य की परिभाषा तथा भेदों पर प्रकाश डालिए।

उ. ————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

————————————————————————————————

____

____

प्रश्न 2 वाक्य तथा इसके भेदों पर चर्चा कीजिए।

उ. ____

____

____

____

____

____

प्रश्न 3 अर्थ तथा क्रिया के आधार पर वाक्य के कितने भेद होते हैं ?

उ. ____

____

____

____

____

____

14.7 पठनीय पुस्तकें

1. भोलानाथ तिवारी – भाषाविज्ञान
2. सूरजभान सिंह – हिन्दी भाषा
3. कपिलदेव द्विवेदी – भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र

– – – –

हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

15.0 रुपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएं

15.3.1 वैदिक संस्कृत

15.3.2 लौकिक संस्कृत

15.4 मध्यकालीन आर्यभाषा

15.4.1 पालि

15.4.2 प्राकृत

15.4.3 अपभ्रंश

15.5 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं

15.5.1 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की विशेषताएँ

15.5.2 हिंदी की उपभाषाएँ एवं उनकी बोलियाँ

15.6 कठिन शब्द

15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.8 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

15.1 उद्देश्य :– प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

– प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की जानकारी के साथ–साथ वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत का भी अध्ययन कर सकेंगे।

– मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा उनके अंतर्गत आने वाली पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश का अध्ययन भी कर सकेंगे।

– आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं और उनकी विशेषताओं को जान सकेंगे।

15.2 प्रस्तावना

'भाषा' शब्द संस्कृत के 'भाष्' से बना है, जिसका अर्थ है 'भाष् व्यक्तायां वाचि' अर्थात् भाषा उसे कहते हैं जो व्यक्त वाणी के रुप में अभिव्यक्त की जाती है। कामता प्रसाद गुरु के अनुसार "भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भॉति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टता समझ सकता है।

विश्व में लगभग तीन हज़ार के करीब भाषाएं बोली जाती हैं। इनमें से बहुत सी भाषाएं पारिवारिक रूप से आपस में मिलती–जुलती हैं, अर्थात वे मूलतः किसी एक भाषा से ही निकली हैं। भौगोलिक सन्निकटता, ध्वनि–साम्य, व्याकरण, शब्द–समूह आदि के आधार पर विद्वानों ने सम्बद्ध भाषाओं को परिवारों, शाखाओं, प्रशाखाओं आदि में विभक्त किया है। विश्व की भाषाओं के परिवारों की संख्या के संबंध में विद्वानों में काफ़ी मतभेद है। विल्हेल्म फॉन हुम्बोल्ट और भोलानाथ तिवारी ने इसकी संख्या 13 मानी है। फ्रिड्रिश म्यूलर ने इसकी संख्या 100 मानी है। सर्वमान्य रूप से चार भौगोलिक क्षेत्र के अंतर्गत 18 भाषा परिवारों को प्रमुखता दी जाती है, जो निम्न हैं :

	भौगोलिक क्षेत्र	भाषा परिवार
(क)	यूरेशिया	भारोपीय, द्राविड़, काकेशी, बुरुशस्की, उराल अल्ताई, चीनी, जापानी–कोरियाई, अत्युत्तरी, बास्क, सामी–हामी।
(ख)	अफ्रिका भूखण्ड	सुदानी, बन्तू, होतेंतोत–बुशमैनी।
(ग)	प्रशान्त महासागीरी भूखण्ड	मलय–पोलिनेशियाई, पापुई, आस्ट्रेलियन, दक्षिण पूर्व एशियाई।
(घ)	अमेरिका भूखण्ड	अमेरिकी।

भारत–यूरोप और उसके आसपास फैले हुए परिवार को भारोपीय परिवार नाम दिया गया। इसको 'इंडो–जर्मनिक', 'इंडो–केल्टिक', 'आर्य', नाम से जाना जाता है। यह सबसे बड़ा भाषा परिवार है जो यूरोप, कैनेडा, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, ईरान, अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान, भारत, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड आदि तक फैला हुआ है। भारोपीय परिवार को ध्वनि के आधार पर मुख्यतः दो वर्गों में बांटा गया हैः केंतुम्

और सतम्। केंतुम् वर्ग में ग्रीक, इटालिक, केल्टीक, जर्मनीक, हिटाइट और तोखरी को रखा गया, जबकि सतम् वर्ग में भारत–ईरानी, आर्मीनी, बाल्टो–स्लाविक, अल्बानी उपपरिवारों को शामिल किया गया।

भारोपीय के भारत–ईरानी उप परिवार को 'आर्यशाखा' भी कहा जाता है। भारतीय आर्यभाषा और इरानी भाषा में तीन लिंग, तीन वचन और आठ कारक तथा सहज सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विनियम होने के कारण इसे ईरानी कहा जाने लगा।

भारतीय–ईरानी अपने मूल स्थान से चलकर ओक्स घाटी के पास आए और वहाँ से वह जिन तीन अलग–अलग क्षेत्रों में गए उन्हीं के आधार पर इस उप परिवार को तीन वर्गों में बांटा गया :

1) ईरानी : जिसमें प्राचीन फारसी, अवेस्ता, पहलवी, बलूची आदि भाषाएं आती हैं।

2) दरद : जिसमें कश्मीरी, शीना, चित्राली आदि भाषाएँ आती हैं।

3) भारतीय आर्य : जिसमे भारत की आर्य भाषाएँ आती हैं।

भारतीय आर्य भाषा भारत–ईरानी उप परिवार की ही नहीं, बल्कि पूरे भारत–यूरोपीय परिवार की भाषाओं में सबसे अधिक गौरवशाली, दीर्घ, परम्परायुक्त, विशाल और समृद्ध भाषा है। इस शाखा की भाषाएं– वैदिक, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी आदि विश्व भर की भाषाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। अनेक विद्वानों का मानना है कि भारत में आर्यों के आने के पूर्व यहाँ पर नेग्रिटो ,ऑस्ट्रिक, किरात तथा द्रविड़ जातियां रहती थी। कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि भारतीय आर्य ईरानियों एवं दरदों से 1500 ई0 पूर्व अलग होकर पश्चिमी सीमा से भारत में प्रविष्ट हुए थे। उन्होंने यहाँ की मूल जातियों पर विजय पाई और उन्हें भारत से जाने के लिए विवश किया। यहां पर आर्यों ने केवल राजनीतिक विजय ही प्राप्त नहीं की, बल्कि वह अपने साथ सुविकसित भाषा एवं यज्ञ परायण संस्कृति भी लाये थे, जिसका प्रसार भारत में होने लगा था। लेकिन वह स्थानीय अनार्य जातियों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त न रह सकी। इस बात का उचित प्रमाण हमें सिंधु घाटी सभ्यता में मिले पशुपालन तथा अन्य अवशेषों से मिलता है। भारत में आर्य को प्राकृतिक और मानुषिक अनेक बाधाओं का सामना करते हुए सुव्यवस्थित ढंग से रहने के लिए अनेक शताब्दियाँ लग गईं। इस काल क्रम में भाषा भी स्थिर न रह सकी, उसके रूप में भी परिवर्तन होता गया। विकास क्रम की दृष्टि से भारतीय आर्यभाषाओं को तीन कालों से विभाजित किया जा सकता है :

1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (1500 ई0 पू0 से 500 ई0 पू0 तक)।
2. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (500 ई0 पू0 से 1000 ई0 तक)।
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा (1000 ई0 से आज तक)।

15.3 प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएं

आर्यों ने जब भारत में आगमन किया, उस समय उनकी भाषा तत्कालीन इरानी भाषा से कदाचित् अलग नहीं थी, परन्तु जैसे–जैसे यहाँ का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव, विशेषतः आर्योतर लोगों से मिश्रण के कारण पड़ने लगा, तो उनकी भाषा परिवर्तित होने लगी। इस प्रकार वह भाषा आर्य कहलाई जो ईरानी से कईं बातों में अलग थी। इस प्राचीन आर्यभाषा के 'वैदिक संस्कृत' और लौकिक संस्कृत दो रूप मिलते हैं

15.3.1 वैदिक संस्कृत (1500 ई0 पू0 से 800 ई0 पू0 तक)

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं का प्राचीनता नमूना वैदिक साहित्य में दिखाई देता है। वैदिक साहित्य का सृजन वैदिक संस्कृति में हुआ तथा इसको 'वैदिकी', 'वैदिक', 'छन्दस्' नामों से भी जाना जाता है। मूल रूप से वेदों की रचना जिस भाषा में हुई उसे वैदिक संस्कृत कहा जाता है। संस्कृत का यह रूप हमें वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों आदि में देखने को मिलता है। संहिताओं में 'ऋक् संहिता', 'यजुः संहिता', 'साम संहिता' एवम 'अथर्व संहिता' मिलते हैं। जिनमें 'ऋक संहिता' महत्वपूर्ण है। ब्राह्मण–भाग में 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'तांडव अथवा पंचविश ब्राह्मण', 'शतपथ ब्राह्मण' और 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' ग्रंथ अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उपनिषदों में वैदिक मनीषियों के आध्यात्मिक एवं पारमार्थिक चिंतन के दर्शन होते हैं। इनकी संख्या 108 बताई गई है, किंतु 12 उपनिषद् ही मुख्य हैं– ईश, केन, कठ, प्रश्न, बृहदारण्यक, ऐतरेय, छान्दोग्य, तैत्तरीय, मुण्डक, माण्डूक्य, कोषीतकी और श्वेतश्वेतर उपनिषद। डॉ धीरेन्द्र वर्मा और डॉ उदय नारायण तिवारी ने वैदिक ध्वनियों की संख्या 52 मानी है, जिसमे 13 स्वर और 39 व्यंजन है। वैदिक संस्कृति में तीन लिंग (पुलिंग स्त्रीलिंग, एवं नपुंसक लिंग), तीन वचन (एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन), तीन वाच्य (कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य एवं भाववाच्य) एवं आठ विभक्तियों (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदाय, संबोधन, अपादान, सम्बंध, अधिकरण) का प्रयोग मिलता है।

15.3.2 लौकिक संस्कृत (800 ई0 पू0 से 500 ई0 पू0 तक)

वेदों के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कालांतर में वैदिक संस्कृति के स्वरूप में भी बदलाव आता चला गया। पाणिनी और कात्यायन ने संस्कृत भाषा के बिगड़ते स्वरूप का संस्कार कर इसे व्याकरण बद्ध किया। पाणिनी के नियमीकरण के बाद की संस्कृत, वैदिक संस्कृत से काफी भिन्न है जिसे 'लौकिक' या 'क्लासिकल' संस्कृत कहा गया है। पाणिनी के 'अष्टाध्यायी' में इसका विवेचन किया गया है। भाषा के अर्थ में 'संस्कृत' (संस्कार की गई, शिष्ट या अप्रकृत) शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वैदिक संस्कृत की चार ध्वनियां ळ, ळह, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के लुप्त होने से लौकिक संस्कृत की 48 ध्वनियां शेष बच गई थीं। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और माघ आदि कवियों की रचनाएं इसी लौकिक संस्कृत में है। रामायण, महाभारत, नाटक, व्याकरण आदि ग्रंथ भी लौकिक संस्कृत में देखने को मिलते हैं। हिंदी का प्राचीनतम रूप इसी लौकिक संस्कृत को माना जाता है। संस्कृत काल के अंतिम पड़ाव तक आते–आते मानक अथवा परिनिष्ठित भाषा तो एक ही रही, किंतु क्षेत्रीय स्तर पर तीन क्षेत्रीय बोलियाँ विकसित हुई :

1) पश्चिमोत्तरी (पश्चिमी तथा उत्तरी) बोली।

2) मध्यदेशी बोली।

3) पूर्वी बोली।

15.4 मध्यकालीन आर्यभाषा (500 ई0 पू0 से 1000 ई0 तक)

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल में जनभाषा पर आधारित भाषा के दो रूपों 'वैदिक' और 'लौकिक' संस्कृत का साहित्य में प्रयोग हुआ। दूसरे रूप लौकिक संस्कृत को पाणिनी ने अपने व्याकरण में एक स्थायी रूप दिया, किंतु जनभाषा भला इस बंधन को कहां मानती ? वह अबाध गति से परिवर्तित होती रही। इस जनभाषा के मध्यकालीन रूप को ही 'मध्यकालीन आर्यभाषा' की संज्ञा दी गई है। इस मध्यकालीन आर्यभाषा को 'प्राकृत' भी कहा गया है। इन 1500 वर्षों की प्राकृत भाषा को तीन कालों में विभाजित किया गया है :

1) पालि (प्रथम प्राकृत) 500 ई0 पू0 से 1 ई0 तक।

2) प्राकृत (द्वितीय प्राकृत) 1 ई0 से 500 ई0 तक।

3) अपभ्रंश (तृतीय प्राकृत) 500 ई0 से 1000 ई0 तक।

15.4.1 पालि (प्रथम प्राकृत)

पाली भारत की प्रथम देश भाषा है। मध्यकालीन भारतीय भाषाओं की महत्वपूर्ण भाषा पालि का उदय 'वैदिक और लौकिक' संस्कृत की प्रतिक्रिया स्वरुप हुआ था। 'पालि' का अर्थ है 'बुद्ध वचन' अर्थात ऐसी भाषा जिसमें गौतम बुद्ध ने उपदेश दिए, उसे पालि भाषा कहा जाता है। इसे देवभाषा भी कहा जाता है। 'पालि' शब्द भाषा के लिए इस्तेमाल न होकर 'बुद्ध वचन' के लिए प्रयोग किया गया। इस शब्द का उल्लेख चौथी शताब्दी के ग्रंथ 'दीपवंश' तथा आचार्य बुद्धघोष के द्वारा किया गया है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों में काफ़ी मतभेद है :

1) पंडित विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार 'पालि' का सम्बंध संस्कृत पंक्ति से है। प

2) भण्डारकर मानते हैं कि यह सबसे पुरानी प्रकृत है इसलिए शायद उसे 'प्राकृत' नाम दिया गया और 'पालि' शब्द 'प्राकृत' का रूपांतर है। यथा

3) कुछ विद्वानों के अनुसार 'पल्लि' (गांव की भाषा) से 'पालि' शब्द का विकास हुआ है। जबकि पालि गांव तक ही सीमित न रहकर श्रेष्ठ धार्मिक भाषा भी थी।

पालि में ही त्रिपिटक ग्रंथो की रचना हुई है। त्रिपिटकों की संख्या तीन है–1) सुत्त पिटक, 2) विनय पिटक, 3) अभिधम्म पिटक। 'पालि' में त्रिपिटक साहित्य के अलावा 'अट्ठकथा साहित्य', 'दीपवंश', 'महावंश' आदि ग्रंथ भी

अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन ग्रंथों के अनुशीलन से पता चलता है कि पालि का प्रचार न केवल उत्तरी भारत में था, बल्कि बर्मा, लंका, तिब्बत, चीन आदि देशों तक विस्तारित था। पालि भाषा के तीन व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध हैं– कच्चायन व्याकरण (महाकच्चायन), मोग्गलान व्याकरण (मोग्गलान), सद्दनीति व्याकरण (बर्मी भिक्षु अग्गवंश)। पालि के प्रसिद्ध व्याकरण कच्चायन के अनुसार पालि में 41 ध्वनियां (8 स्वर तथा 33 व्यंजन), और मोग्गलान के अनुसार 43 ध्वनियां (10 स्वर और 33 व्यंजन) हैं। डॉ.ग्रियर्सन व राहुल सांकृत्यायन ने पाली को मगध प्रदेश की भाषा स्वीकार किया, जबकि सुनीति कुमार चटर्जी तथा उदय नारायण तिवारी ने मध्य देश की बोली स्वीकार किया। सर्वसम्मति से विद्वानों ने पाली भाषा को मध्यप्रदेश की बोली ही स्वीकार किया है। पालि के अंतर्गत ही अभिलेखी प्रकृत या शिलालेखी प्रकृत भी आती है। इसके अधिकांश लेख शिला पर अंकित होने के कारण इसकी संज्ञा 'शिलालेखी प्राकृत' हुई। पालि में तीन लिंग, तीन वाच्य तथा दो वचन का प्रयोग मिलता है। पालि में द्विवचन नहीं है। जहां वैदिक ध्वनियों ल्, लह् संस्कृत में लोप हो गई थीं, वहीं पालि में ये सुरक्षित हैं। इसमे तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है।

15.4.2 प्राकृत (द्वितीय प्राकृत)

वैसी तो मध्यकालीन आर्यभाषा के सभी रूपों को 'प्रकृत' कहते हैं, परन्तु 1 ई0 से 500 ई0 तक प्रचलित भारतीय आर्य भाषा को ही वास्तव में प्राकृत कहा गया है। 'प्रकृत' की व्युत्पत्ति के संबंध में दो मत प्रचलित हैं, जो निम्न हैं :

1) प्राकृत प्राचीनतम् जनभाषा है। नमि साधु ने इसका निर्वाचन करते हुए लिखा है–"प्राक् पूर्व कृत प्राकृत" अर्थात प्राक् कृत शब्द से इसका निर्माण हुआ है जिसका अर्थ है पहले की बनी हुई। जो भाषा पहले से चली आ रही है उसका नाम 'प्राकृत' है।

2) हेमचंद्र, मार्कण्डेय, वासुदेव, लक्ष्मीधर, देवमणि का मानना है कि प्राकृत संस्कृत से निकली है। हेमचंद्र प्राकृत को संस्कृत से निकली मानते हुए कहते हैं कि "प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत आगतंवा प्राकृतम्।"

द्वितीय प्राकृत को 'साहित्यिक प्राकृत' भी कहते हैं। प्राकृत भाषाओं के विषय में सर्वप्रथम भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में विचार किया है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के प्रथम प्राकृत का स्वरूप जल्दी से द्वितीय प्रकृति में नहीं बदल गया। इसे बदलने में लगभग 200 वर्ष लगे होंगे जिसे हम संक्रांति काल कह सकते हैं। संक्रांतिकाल की प्रमुख सामग्री तीन रूपों में मिलती है :

क) अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत (100 ई0)।

ख) धम्मपद की प्राकृत (200 ई0)।

ग) निय प्राकृत (ईसा की तृतीय सदी)।

इन नाटकों की खंडित प्रतियाँ मध्य एशिया में मिली थीं। जिनकी भाषा अशोक के अभिलेखों की प्राकृतों से मिलती–जुलती है। बोली की दृष्टि से इसमें प्राचीन मागधी, शौरसेनी ,अर्धमागधी तीनों का प्रयोग किया गया है। ईसवी सन् तक आते–आते प्राकृतों का प्रयोग साहित्यिक भाषा के रूप में होने लगा, जिसके उपरान्त इसके व्याकरण की ओर भी लोगों का ध्यान गया। प्रकृत के प्राचीन वैयाकरणों में सर्वप्रथम नाम वररुचि का आता है। उन्होंने अपने 'प्राकृ त प्रकाश' में प्राकृत के चार भेद किए– महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और शौरसेनी। 12वीं शताब्दी तक आते–आते 'प्राकृ त का पाणिनी' माने जाने वाले जैन आचार्य हेमचंद्र ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्राकृत व्याकरण' में प्राकृत भाषा के तीन और भेदों का उल्लेख किया–आर्षी (अर्धमागधी), चुलिका पैशाची और अपभ्रंश। कुछ अन्य व्याकारणों तथा अन्य स्रोतों से प्राकृतों की संख्या बीस से ऊपर है, किंतु साहित्यिक प्राकृत के मुख्यतः पांच ही भेद माने जाते हैं–क) शौरसेनी (ख) महाराष्ट्री (ग) मागधी (घ) अर्धमागधी (ड.)पैशाची

क) शौरसेनी प्राकृत

यह मूलतः शूरसेन या मथुरा के आस पास की बोली थी। इसका विकास वहाँ की 'पालिकालीन' स्थानीय बोली से हुआ था। मध्यदेश की भाषा होने के कारण इसे कुछ लोग संस्कृत की भांति उस काल की मानक भाषा मानते थे, क्योंकि मध्यदेश संस्कृत का केंद्र था इसलिए शौरसेनी उससे बहुत प्रभावित हुई। संस्कृत नाटकों की गद्य की भाषा शौरसेनी ही है जिसका उदाहरण हमें 'कर्पूरमंजरी' में मिलता है। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। जैनों ने अपने साम्प्रदायिक ग्रंथों के लेखन में भी इसी प्राकृत का प्रयोग किया है। संस्कृत नाटकों के अधिकांश पात्रों द्वारा शौरसेनी प्राकृत बोलने के कारण यह ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में इसका महत्व संस्कृत से कदाचित कम नहीं था। शौरसेनी के अन्य स्थानीय रूप अवन्ती, आभीरी आदि हैं। असंयुक्त तथा दो स्वरों के मध्य में आने वाला सांस्कृत 'त' इसमें 'द' (गच्छति–गच्छदि) और 'थ' का 'ध' (कथय–कधीहि) हो गया। 'क्ष' का विकास 'क्ख' में हुआ (इक्षु–इक्खु)।

ख) महाराष्ट्री प्राकृत

महाराष्ट्री को प्राकृत वैयाकरणों ने आदर्श, परिनिष्ठित तथा मानक प्राकृत माना है। इस प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है। डॉ. हार्नले के अनुसार महाराष्ट्री का अर्थ 'महान राष्ट्र' की भाषा है। जार्ज ग्रियर्सन एवं जूल ब्लाक ने महाराष्ट्री प्रकृत से ही मराठी की उत्पत्ति मानी है। कुछ लोग इसे केवल महाराष्ट्र तक सीमित न मानकर 'महाराष्ट्र', अर्थात पूरे भारत की भाषा मानने के पक्ष में हैं। राजा हाल कृत 'गाहा सतसई' (गाथा–सप्तशती), प्रवरसेन कृत 'रावण वहो' (सेतुबंद), जयवल्लभ कृत 'वज्जालग्ग' तथा हेमचंद्र कृत 'कुमार पाल चरित' महाराष्ट्री प्राकृत में लिखी गई प्रमुख साहित्यिक कृतियां हैं। इसमें गीतकव्य, खंडकाव्य, महाकाव्य आदि लिखे गए हैं। इसमें दो स्वरों के बीच आनेवाले अल्पप्राण स्पर्श (क, त, प, द, ग) प्रायः लुप्त हो गए हैं (कृति–कइ) तथा महाप्राण स्पर्श (ख, थ, फ, ध, घ) का केवल 'ह' रह गया (नाथ–नाह, गाथा–गाहा)।

ग) मागधी प्राकृत

यह मगध देश की भाषा रही है। मार्कण्डेय तथा वररुचि इसे शौरसेनी प्राकृत से निकली मानते हैं। इसकी कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती। संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र इस बोली का प्रयोग करते थे। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष में मिलता है। भरतमुनि के अनुसार मागधी अन्तः पुर के नौकरों, अश्वपालों आदि की भाषा थी। मागधी के शाबरी, चांडाली, शाकारी, ढक्की, वाहनीकी इत्यादि जातीय रूप हैं। मागधी को गौड़ी भी कहती हैं। इसमें 'स', 'ष' के स्थान पर 'श' मिलता है (पुरुष–पुलिश) तथा 'र' के स्थान पर 'ल' मिलता है जैसे राजा–लाजा।

घ) अदर्ध मगधी

जॉर्ज ग्रियर्सन के अनुसार यह मध्यदेश (शूरसेन) और मगध के मध्यवर्ती देश (अयोध्या या कोसल) की भाषा थी। जैन आचार्य इसे 'आर्ष', 'ऋषि भाषा', 'अर्षी', या 'आदि भाषा' कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में अद्र्धमागधी को राजपूतों एवं सेठों की भाषा बताया है। इसमें मागधी की प्रवृत्तियाँ पर्याप्त मात्रा में मिलती है, जिसके कारण इसे अद्र्धमागधी कहा जाता है। इसका प्रयोग प्रमुखतः जैन साहित्य में हुआ है। इसमें ष, 'श' के स्थान पर 'स' मिलता है जैसे श्रावक–सावग, वर्ष–वास। कहीं–कहीं 'च' वर्ग के स्थान पर 'त' वर्ग मिलता है (चिकित्सा–तेइच्छ)।

(ड.) पैशाची

इस प्राकृत को पैशाचिकी, पैशाचिका, ग्राम्य भाषा, भूत भाषा, भूत वचन, भूत भाषित आदि नामों से भी जाना जाता है। कुछ ऐसी अनार्य जातियां, जिन्होंने आर्य संस्कृति को आत्मसात नहीं किया था उन्हें पिशाच कहा जाता था। महाभारत में भी पिशाच जाति का उल्लेख है। यह जाति उत्तर पश्चिम में कश्मीर के पास रहती थी। जॉर्ज ग्रियर्सन ने पैशाची भाषा–भाषी लोगों का आदिम–वास स्थान उत्तर पश्चिम पंजाब तथा अफगानिस्तान मानते हुए इसे दर्द से प्रभावित माना है। पिशाची में साहित्य नहीं के बराबर मिलता है। अब केवल दो संस्कृति रूपांतर बृहत्कथामंजरी और कथासरित्सागर ही शेष हैं। हम्मीरमर्दन तथा कुछ अन्य नाटकों में कुछ पात्रो ने इसका प्रयोग किया है। इसमें दो स्वरों के बीच में आने वाले स्पर्श वर्गों के तीसरे और चौथे घोष व्यंजनों (ग, घ, ज, झ, ड, ढ, द, ध, ब, भ) का क्रमशः पहला और दूसरा अर्थात अघोष (क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ) हो जाता है। जैसे राजा–राचा।

15.4.3 अपभ्रंश (तृतीय प्राकृत)

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं की तृतीय प्राकृत अपभ्रंश है। अपभ्रंश मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है। इसलिए विद्वानों ने अपभ्रंश को 'संधिकालीन भाषा' कहा है। इसे 'देश भाषा', 'अपभ्रष्ट', 'अवहंस', 'ग्रामीण भाषा', 'अवहट्ट' आदि नामों से भी पुकारा जाता है। अपभ्रंश का सामान्य अर्थ है 'गिरा हुआ', 'बिगड़ा हुआ' या 'भ्रष्ट'। प्राकृत की तुलना में जिस भाषा में ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणिक परिवर्तन हो

गया था, उसे पंडितों ने अपभ्रंश या अवहट्ट नाम देना शुरू कर दिया था। भाषा के अर्थ में अपभ्रंश नाम का प्रयोग छठी सदी से किया जाने लगा था। प्राकृतों का जब साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग किया जाने लगा तो उन्हें व्याकरण बद्ध कर दिया गया और देशी बोलियों का विकास होने लगा। इसी विकसित रूप को अपभ्रंश कहा जाने लगा। अपभ्रंश शब्द का सर्वप्रथम प्रमाणिक प्रयोग पतंजलि के 'महाभाष्य' में मिलता है। पतंजलि ने अपभ्रंश शब्द का प्रयोग 'अपशब्द' के समानार्थक के रूप में किया। कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' में अपभ्रंश के कुछ श्लोक मिलते हैं। अपभ्रंश भाषा का सबसे प्राचीनतम उदाहरण भरतमुनि के 'नाट्य–शास्त्र' में मिलता है, जिसमे अपभ्रंश को 'विभ्रष्ट' कहा गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "अपभ्रंश नाम सबसे पहले वल्लभी के राजा धारसेन द्वितीय के शिलालेख में मिलता है, जिसमें उसने अपने पिता गुहसेन को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का कवि माना है। डॉ सुनीति कुमार चटर्जी ने अपभ्रंश को भारतीय आर्यभाषा के विकास की एक स्थिति माना है। इन्होंने परिनिष्ठित अपभ्रंश का संबंध मध्य देश की भाषा से मना है।

6वीं–7वीं सदी से अपभ्रंश भाषा का स्वरूप स्पष्ट रूप से निर्मित हो चुका था, जिसे आगे चल कर 12वीं सदी में हेमचंद्र ने उसमें व्याकरण की रचना कर अपभ्रंश तथा ग्राम्य भाषा में भेद दिखलाया है, जिससे यह आभास होता है कि उस समय तक अपभ्रंश को भी व्याकरण के नियमों में बाँध दिया गया होगा। अतः नई भाषाओं को जन्म मिला, जिन्हें आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ कहा गया है। विभिन्न विद्वानों ने अपभ्रंश के निम्नलिखित भेद बताए हैं :

विद्वान अपभ्रंश के भेद

1. नमि साधु उपनागर, आभीर, ग्राम्य।
2. मार्कण्डेय नागर, उपनागर, व्राचड़।
3. तागरे पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी।
4. नामवर सिंह पूर्वी, पश्चिमी।

1400–1500 ई0 के आसपास उत्तरी भारत में पंजाबी, सिन्धी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, छत्तीसगढ़ी, पहाड़ी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, उड़िया, असमी तथा बंगाली 13 रूप पर्याप्त विकसित हुए। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भव विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों से हुआ जो इस प्रकार से है :

अपभ्रंश	आधुनिक भाषाएं तथा उपभाषाएं
• शोरसेनी	पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती।
• पैशाची	लहंदा, पंजाबी।

- खस पहाड़ी।
- व्रचार्ड सिंधी।
- महाराष्ट्रीय मराठी।
- अर्द्ध मागधी पूर्वी हिंदी।
- मागधी बंगाली, असमी, उड़िया, बिहारी।

अपभ्रंश में 10 स्वर और 30 व्यंजन मिलते हैं। इसमें दो वचन, दो लिंग और तीन कारकों का ही प्रयोग होता है। इसको उकार बहुला भाषा भी कहा गया है। प्राकृत के सभी स्वर व्यंजनों का विकास उसी रूप में अपभ्रंश में भी हुआ है। इसमें 'ऋ' का लिखन में तो प्रयोग होता था, किंतु उसका उच्चारण 'रि' होता था। अपभ्रंश में य का ज, म का वॅ, व का ब, ष्ण का न्ह, क्ष का क्ख या च्छ आदि रूपों का ध्वनि विकास की बहुत सी अन्य प्रवृतियां भी मिलती हैं। प्राचीन की अपेक्षा आधुनिक भारतीय भाषाओं की ओर इसका झुकाव अधिक देखने को मिलता है।

15.5 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं

1000 ई0 से लेकर आज तक आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास मुख्यतः अपभ्रंश से ही हुआ माना जाता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण के संबंध में बहुत सारे विद्वानों ने अलग अलग विचार प्रस्तुत किये हैं। इन भाषाओं का सबसे पहला वर्गीकरण डॉ0 ए0 एफ0 आर0 हार्नले ने सन् 1880 ई0 में किया। उन्होंने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को चार वर्गों में विभाजित किया जो निम्नांकित हैं :

1. पूर्वी गौडियन पूर्वी हिंदी, बंगाली, असमी, उड़िया।
2. पश्चिमी गौडियन पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, पंजाबी।
3. उत्तरी गौडियन गढ़वाली, नेपाली, पहाड़ी।
4. दक्षिणी गौडियन मराठी।

उनका मानना था कि भारत में आर्यों का आगमन दो बार हुआ है। पहले आए आर्य पंजाब में बसे हुए थे, किंतु जब आर्यों का दूसरा वर्ग सिंधु पार करके पंजाब में प्रवेश कर पहले वाले वाले आर्य पर आक्रमण कर उन्हें वहाँ से स्थानांतरण करने के लिए विवश कर देता है। इनके अनुसार जो आर्य मध्यदेश अथवा केंद्र यानी पूर्वी पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, नेपाल में थे, वह 'भीतरी आर्य' कहलाए और जो आर्य पंजाब छोड़कर उड़ीसा, बंगाल, असम, पश्चिमी पंजाब सिंधु, बिहार आदि जगहों पर चले गए, वह 'बाहरी आर्य' कहलाए।

डॉ जॉर्ज ग्रियर्सन उनके इस मत से सहमत नहीं थे। उन्होंने आर्यों के दोनों दलों के बीच हुए आक्रमण को स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि आर्य भिन्न–भिन्न दलों में आकर मध्यदेश तथा अन्य जगहों पर जाकर बस

गए थे। अपने इस मत में अनेक तर्क और प्रमाण देते हुए उन्होंने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण निम्नांकित ढंग से प्रस्तुत किया है :

1.	बाहरी उपशाखा या बहिरंग शाखा	क)	उत्तरी पश्चिमी समुदाय (लहंदा, सिन्धी)।
		ख)	दक्षिणी समुदाय (मराठी)।
		ग)	पूर्वी समुदाय (उड़िया, बिहारी, बंगला, असमिया)।
2.	मध्य उपशाखा		मध्यवर्ती समुदाय (पूर्वी हिंदी)।
3.	भीतरी उपशाखा या अंतरंग शाखा	क)	केंद्रीय समुदाय (पश्चिमी हिंदी, पंजाबी, गुजराती, भीली, राजस्थानी)।
		ख)	पहाड़ी समुदाय (पूर्वी पहाड़ी या नेपाली, मध्य पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी)।

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना ध्वनिगत और व्याकरणगत आधारों पर करते हुए अपना वैज्ञानिक वर्गीकरण निम्न वर्गों में बांटा :

क) उदीच्य	सिन्धी, लहंदा, पंजाबी।
ख) प्रतीच्य	राजस्थानी, गुजराती।
ग) मध्य देशीय	पश्चिमी हिंदी।
घ) प्राच्य	पूर्वी हिंदी, बिहारी, बंगला, उड़िया, असमिया।
ङ) दक्षिणात्य	मराठी।

इन्होंने कश्मीर की उत्पत्ति दर्द भाषा से मानी हैं। डॉ धीरेन्द्र वर्मा ने चटर्जी के वर्गीकरण में सुधार करते हुए अपना वर्गीकरण निम्नांकित ढंग से प्रस्तुत किया :

क) उदीच्य	सिन्धी, लहंदा, पंजाबी।
ख) प्रतीच्य	गुजराती।
ग) मध्य देशीय	पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पूर्वी हिंदी, बिहारी।
घ) प्राच्य	बंगला, उड़िया, असमिया।
ङ) दक्षिणात्य	मराठी।

डॉ. हॉर्नले, डॉ. ग्रियर्सन, डॉ. चटर्जी तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि विद्वानों के वर्गीकरण को देखने से स्पष्ट होता है कि ग्रियर्सन का वर्गीकरण न तो ऐतिहासिक और न ही भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से सही था। आज बहुत सारे विद्वान इस बात का खंडन करते हैं कि आर्यों का आगमन बाहर से हुआ था। वह तो उन्हें मूलतः सप्तसिंधु प्रदेश का वासी मानते हैं। दूसरी ओर डॉक्टर चटर्जी का वर्गीकरण ऐतिहासिक एवं भाषावैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से युक्तियुक्त है।

15.5.1 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की विशेषताएँ

सिन्धी

इस शब्द का संबंध संस्कृत 'सिंधु' से है। सिंधुदेश में सिंधु नदी के दोनों किनारों पर सिंधी भाषा बोली जाती है। इसकी उत्पत्ति 'ब्राचड़ अपभ्रंश' से हुई है। भारत पाक विभाजन के बाद इसके बोलने वाले पाकिस्तान के सिंध प्रांत में तथा भारत के कच्छ, बम्बई, दिल्ली, अजमेर आदि में है। सिंधी की अपनी लिपि का नाम 'लंडा' है, किंतु यह गुरुमुखी तथा फारसी लिपि में भी लिखी जाती है। सिंधी की मुख्यतः पांच बोलियाँ विचोली, सिराइकी, थरेली, लासी और लाड़ी हैं। इनमें विचोली प्रमुख है, जो आज वहाँ की साहित्यिक भाषा बन गई है। सिंधी के शब्द भंडार का लगभग 75 प्रतिशत भाग संस्कृत तद्भव शब्दों का है। इसके सभी शब्द स्वरांत होते हैं तथा ग, ज, ब, व्यंजन ध्वनियां सिंधी भाषा की विशिष्ट ध्वनियां मानी जाती है। इसमें दो लिंग और दो वचन है। सिंधु की पुल्लिंग संज्ञाएॅ प्रायः उकारांत तथा ओकारांत होते हैं, जबकि स्त्रीलिंग संज्ञाएॅ अकारांत तथा आकारांत होती हैं।

लहन्दा

इसका शब्दगत अर्थ है 'सूर्यास्त' या 'पश्चिमी'। यह पंजाब के पश्चिमी हिस्से तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग की भाषा है। इसकी लिपि भी 'लंडा' है, जिसमे स्वर मात्राओं के चिन्ह् नहीं होते हैं। इसको पश्चिमी पंजाबी, हिन्दकी, जटकी, मुल्तानी, चिभाली, पोठवारी आदि नामों से भी जाना जाता है। इसकी चार बोलियाँ मुल्तानी, पोठवारी, धन्नी, लहंदा हैं। इसको बोलने वाले अधिकांश लोग मुसलमान ही है, जो फारसी लिपि का ही प्रयोग करते हैं, जिसके कारण इसमें अरबी फारसी के शब्द अधिक है। इसमें साहित्य नहीं के बराबर मिलता है। पंजाबी की अपेक्षा यह भाषा बलयुक्त तथा कर्कश है।

पंजाबी

'पंजाब' फारसी शब्द है, जिसका अर्थ है 'पांच नदियों का देश' अर्थात सतलुज, रावी, व्यास, चेनाब, झेलम, नदियों से संबंधित क्षेत्र को 'पंजाब' और वहाँ की भाषा को 'पंजाबी' कहा गया है। इसकी उत्पत्ति टक्क अपभ्रंश से हुई है, किंतु इस पर केकय, शौरसेनी तथा पैशाची का भी प्रभाव रहा है। इनमें सबसे अधिक प्रभाव शौरसेनी का ही है। पंजाबी की भी अपनी लिपि 'लंडा' थी, किंतु गुरु अंगद ने इसमें सुधार करके इसको गुरुमुखी लिपि बना दिया। पंजाबी की दो उपभाषाएँ–पूर्वी पंजाबी और पश्चिमी पंजाबी हैं। पूर्वी पंजाबी ही मुख्य पंजाबी है, जबकि पश्चिमी पंजाबी

'लहन्दा' है। पाकिस्तान बनने के बाद दोनों भाषाओं के विकास की दिशा भिन्न–भिन्न हो गई है, किंतु फिर भी दोनों को पंजाबी कहा जाता है। पंजाबी की प्रमुख बोलियाँ डोगरी, माझी, दोआबी, राठी आदि हैं। इसमें घ, झ, द, ध, भ का उच्चारण क्ह, च्ह, ट्ह, त्ह, प्ह जैसा होता है। बहुवचन स्त्रीलिंग में सभी संज्ञाओं के अंत में 'ऑ' लगता है–जैसे राणिऑ, कुडियॉ। संयुक्त स्वरों को स्वर भक्ति के साथ बोलने की प्रवृत्ति है–जैसे धर्म का धरम, क्रोध–करोध।

मराठी

यह महाराष्ट्र प्रान्त की भाषा हैं। इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। मराठी की अपनी लिपि देवनागरी है, किन्तु कुछ लोग मोड़ी लिपि का भी प्रयोग करते हैं। इसकी प्रमुख बोलियाँ कोंकणी, नागपुरी, कोष्टी, और माहारी आदि हैं। मराठी साहित्य बहुत संपन्न है। इसका शब्द भंडार तत्सम्, तद्भव, फारसी, द्राविड़ शब्दों से भरा हुआ है। नामदेव और ज्ञानेश्वर की कृतियाँ इसी में मिलती हैं। इसमें तीन लिंग और दो वचन मिलते हैं। इसमें 'ऋ' का रु हो जाता है। पूना के आसपास बोली जाने वाली भाषा ही परिनिष्ठित मराठी मानी जाती है।

गुजराती

यह गुजरात प्रदेश की भाषा है। गुजरात का संबंध' गुर्जर' जाति से है–गुर्जर + त्रा– गुज्जरत्ता–गुजरात। इस भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। यह भाषा गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, राजस्थान का दक्षिणी हिस्सा, बम्बई के सीमावर्ती प्रदेश तक बोली जाती है। इसकी लिपि 'गुजराती' नाम से प्रसिद्ध है। यह कैथी से मिलती–जुलती लिपि में लिखी जाती है। इसमें शिरोरेखा नहीं लगती है। साहित्य की दृष्टि से यह संपन्न भाषा है। इसकी मुख्य बोलियाँ काठियावाड़ी, पट्टनी, सुरती, नगरी, बम्बइया आदि हैं। इसमें 'ज्ञ' का उच्चारण 'ग्न' होता है–जैसे विज्ञान का विग्नान। इसमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक तीन लिंग प्रयुक्त किए जाते हैं।

असमी

यह असम प्रदेश की भाषा है, जिसे 'असमिया' कहा जाता है। इसका विकास मागधी से हुआ है। इस पर प्राचीन बंगला का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। असमी की अपनी लिपि है जो बंगला से बहुत मिलती है। सन् 1947 के बाद स्वतंत्र रूप से इस भाषा का विकास होना शुरू हो गया है। अब तो असमी में रसायन, इतिहास और वैद्यक ग्रंथों का निर्माण भी हो गया है। इसकी मुख् बोली विश्नुपुरिया है। बंगला की तरह असमी में भी संयुक्त व्यंजनों का द्वित्व हो जाता है। इसमें 'च', 'छ' का 'स' हो जाता है और कभी–कभी 'स' का 'ह' या 'खा' हो जाता है।

उड़िया

यह उड़ीसा की भाषा है। उड़िया मागधी प्राकृत से विकसित मागधी अपभ्रंश के दक्षिणी पूर्वी रूप से निकली है। उड़िया भाषा बंगला से बहुत मिलती जुलती है, लेकिन इसकी लिपि उससे सर्वथा भिन्ना देवनागरी से मिलती है। प्राचीन काल में उड़िसा को उत्कल देश कहे जाने के कारण इसे उत्कली भी कहा जाता है। इसकी मुख्य बोलियाँ

गंजामी, संभलपुरी आदि हैं। इसमें तेलुगू, मराठी, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग होता है। इसमें 'ऋ' का 'रू' हो जाता है। इसमें व्याकरणगत लिंग का अभाव देखने को मिलता है।

बंगला

पश्चिम बंगाल की भाषा होने के साथ–साथ यह बांग्लादेश में भी बोली जाती है। इसकी उत्पत्ति मागधी के प्राकृत से विकसित मागधी अपभ्रंश (जिसे गौड़ी अपभ्रंश भी कहा जाता है) से हुई है। बंगला साहित्य पर संस्कृत के प्रभाव के साथ–साथ अंग्रेजी का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। बंगला की अपनी लिपि है, जो पुरानी देवनागरी का ही रूपांतर है। इस भाषा का प्राचीन साहित्य समृद्ध नहीं है, किंतु आधुनिक काल का साहित्य काफी समृद्ध दिखाई देता है। इसकी मुख्य बोलियों में पश्चिमी, दक्षिणी–पश्चिमी, उत्तरी, राजबंगशी, पूर्वी आदि हैं। पुराने साहित्य में 'चंडीदास' और आधुनिक में 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर' प्रसिद्ध हैं। इसमें 'ण' का 'न' तथा 'स' 'ष', का 'श' मिलता है। अन्य भाषाओं की अपेक्षा यह संयोगात्मक है। इसमें 'य', का 'ज', तथा 'व', का 'ब' उच्चारण होता है। ऐ, औ का उच्चारण संयुक्त स्वर के रूप में आए, आई होता है।

बिहारी

मागधी अपभ्रंश से विकसित यह बिहार प्रान्त की भाषा है। कईं दिनों तक इसे बंगला भाषा का ही एक अंग माना जाता रहा है, परंतु अब इसे निश्चित रूप से हिंदी की उपभाषा के रूप में स्वीकृति मिल गयी है। इसकी तीन बोलियां–भोजपुरी, मगही और मैथिली हैं। जिनमें भोजपुरी और मगही की लिपि कैथी है, किन्तु अब देवनागरी लिपि का प्रचार–प्रसार बढ़ता जा रहा है। मैथिली लिपी बंगला से अधिक साम्य रखती है। मैथिली में विद्यापति की कृतियाँ प्रसिद्ध है। इसमें 'ड़' का 'र', 'ढ' का 'रह' तथा 'ल' का 'र' हो जाता है। जैसे सड़क– सरक, गाली–गारी। पूर्वी हिंदी की तुलना में बिहारी कुछ अधिक आकार बहुला उपभाषा है जैसे थोड़, भल।

पहाड़ी भाषाएं

यह भाषा हिमालय के निचले भाग नेपाल से लेकर शिमला तक बोली जाती है। इसकी तीन शाखाएं पूर्वी पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी और मध्य पहाड़ी हैं। पूर्वी तथा मध्य पहाड़ी भाषा देवनागरी लिपि में तथा पश्चिमी पहाड़ी टकरी लिपी में लिखी जाती है। पूर्वी पहाड़ी की प्रमुख बोलियाँ नेपाली, कुमाउंनी और गढ़वाली हैं। जबकि पश्चिमी पहाड़ी के अंतर्गत 20 बोलियाँ मिलती हैं, जिनमें से जौनसारी, सिरमौरी, चंबाली प्रमुख हैं। केवल पूर्वी पहाड़ी में साहित्य उपलब्ध है। इसमें अनुनासिक स्वरों की बहुलता और पुल्लिंग संज्ञाएं प्रायः ओकारांत होती हैं।

हिन्दी

हिन्दी शब्द संस्कृत के 'सिंधु' का और फारसी में 'हिन्दु' का विकसित रूप है। सिंधु–हिंदु–हिन्द–हिंदीक–हिन्दी। यह भारत की प्रधान भाषा है। राजभाषा के पद पर आसीन होने के कारण लगभग सारे देश में यह बोली जाती है।

भाषा विज्ञानियों में इसके क्षेत्र को लेकर काफी विवाद है। डॉ. ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में राजस्थानी एवं बिहारी उपभाषाओं को हिन्दी क्षेत्र के बाहर रखा है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने भी इनको हिंदी क्षेत्र से बाहर माना है। डॉ. उदयनारायण तिवारी भी इन्हीं विद्वानों के मत को समर्थन करते हैं। गठन की दृष्टि से हिन्दी की दो उपशाखाएं की जाती हैं–पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी। पश्चिमी हिन्दी की उपबोली खड़ी बोली ही साहित्यिक रुप में हिन्दी कहलाई जाती है। यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।

15.5.2 हिंदी की उपभाषाएँ एवं उनकी बोलियाँ

संसार की सभी भाषाओं को कुछ परिवारों में बांटा गया है। हर एक परिवार में भाषा वर्ग है। हर भाषा के अंतर्गत उनकी विभाषाएँ तथा बोलियाँ हैं। भौगोलिक दृष्टि से हिंदी का क्षेत्र राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश का कुछ हिस्सा है। हिंदी के अंतर्गत पांच उपभाषाएँ तथा बोली वर्ग आते हैं :

	उपभाषाएँ	बोलियाँ
1)	पश्चिमी हिंदी	खड़ी बोली, हरियाणी, ब्रज, बुंदेली, कनौजी।
2)	पूर्वी हिंदी	अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।
3)	राजस्थानी	मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालती।
4)	पहाड़ी	पश्चिमी पहाड़ी, मध्यवर्ती पहाड़ी।
5)	बिहारी	भोजपुरी, मगही, मैथिली।

खड़ी बोली

इस नाम का प्रयोग दो अर्थों में होता है। एक तो 'मानक हिंदी' के लिए जिसकी तीन शैलियाँ 'हिंदी', 'उर्दू' और 'हिन्दुस्तानी' हैं तथा दूसरा उस लोक बोली के लिए जो दिल्ली–मेरठ के आसपास बोली जाती है। यहाँ 'खड़ी बोली' नाम का प्रयोग दूसरे अर्थ में ही किया जा रहा है। खड़ी बोली के नामकरण के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वानों ने मेरठ के आसपास बोली जाने के कारण इसका नाम 'कौरवी' रखा है, परंतु डॉ. भोलानाथ तिवारी खड़ी बोली के लिए कौरवी नाम को उचित नहीं मानते। उनका मानना है कि एक तो यह 'कुरु जनपद' प्रदेश की बोली थी और दूसरा खड़ी बोली वह मूल भाषा है जिस पर आज की परिनिष्ठित हिंदी–उर्दू आधारित है, जो कई दृष्टियों से कौरवी से भिन्न है। डॉ. चटर्जी के अनुसार ब्रज और अवधी को 'पड़ी बोली' कहा जाता था। 18वीं शताब्दी के अंत में हिंदुओं का ध्यान दरबार की परिनिष्ठित बोली की ओर गया तो पड़ी बोली के सादृश्य पर 'खड़ी बोली' नाम पड़ गया। डॉ. धीरेंद्र वर्मा का कहना है कि "खड़ी बोली का सबसे प्रथम प्रयोग

लल्लू लाल ने 'प्रेमसागर' की भूमिका में किया है। ब्रज भाषा की अपेक्षा यह खड़ी–सी–लगती है, इसलिए इसका नाम खड़ी बोली पड़ गया।" डॉ. ग्रियर्सन ने खड़ी बोली के लिए 'सिर हिंदी', 'सर हिंदी', 'वर्नाक्यूलर', हिन्दुस्तानी आदि नाम दिये हैं। डॉ. चटर्जी ने इसे 'जनपदीय हिन्दुस्तानी' कहा है। उर्दू वाले खड़ी बोली का विकास उर्दू से मानते हैं तथा ब्रज भाषा के समर्थक ब्रज भाषा से उत्पन्न बताते हैं। डॉ. धीरेंद्र वर्मा खड़ी बोली का क्षेत्र रामपुर, मुरादाबाद ,बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून, अम्बाला तथा पटियाला के पूर्वी भाग तक मानते हैं। अतः इसके प्रचार–प्रसार को देखते हुए इसे उर्दू या ब्रजभाषा से उत्पन्न न मानकर स्वतंत्र रूप से विकसित एक सहज–स्वाभाविक बोली कहा जा सकता है। खड़ी बोली का प्राचीनतम रूप 11–12वीं शताब्दी के आस–पास देखने को मिलता है। तब से लेकर 19वीं सदी तक यह एक बोली के रूप में विकसित होती रही है। नामदेव, अमीर खुसरो, रामप्रसाद निरंजनी, पं. दौलत राम आदि साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में इसका प्रयोग किया था। रामप्रसाद निरंजनी ने शुद्ध खड़ी बोली गद्य में 'भाषा योगवाशिष्ठ' नामक ग्रंथ लिखा। आधुनिक काल में लल्लू लाल, इंशा अल्ला खां, सदल मिश्र, सदा सुखलाल, राजा शिव प्रसाद, राजा लक्ष्मण सिंह आदि अनेक लेखकों ने इसमें गद्य रचनाएं की। इसके बाद भारतेंदु हरिश्चंद्र ने खड़ी बोली गद्य को व्यवस्थित रूप दिया, परन्तु इनके पूर्व के गद्यकारों ने शुद्ध खड़ी बोली के बदले पूर्वीपन, ब्रज, उर्दू के शब्दों का अधिक प्रयोग करना शुरू कर दिया। देखा जाए तो भारतेंदु काल में भी पूर्वीपन तथ व्याकरणिक शुद्धता का अभाव मिलता है। लेकिन फिर भी हिंदी का प्रचार प्रसार खूब बड़ा। इस दौर में खड़ी बोली अरबी–फारसी, अंग्रेजी, बंगला आदि से शब्द ग्रहण करती हुई निरंतर विकसित होती रही है।

द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने व्याकरण की शुद्धता और हिन्दी भाषा को परिमार्जित करने का काम किया। भाषा की अस्थिरता को दूर कर निश्चित स्थिरता, विराम चिन्हों का समुचित प्रयोग और प्रांतीय व अश्लील शब्दों के स्थान पर सुसंस्कृत शब्दों का प्रयोग होना शुरू हुआ। छायावाद युग में जहाँ एक तरफ गद्द ने गंभीरता प्राप्त की तो वहीं दूसरी तरफ पद्य का विकास भी अधिक हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और अन्य साहित्यकारों ने इसको कविता की भाषा बनाने के लिए विधिवत आंदोलन किया। इसी कारण प्रगतिवाद, प्रयोगवाद में खड़ी बोली कविता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई। वर्तमान में खड़ी बोली उतर भारत की सर्वप्रिय तथा भारत की राजभाषा के पद पर विराजमान है। विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों का प्रभाव इस पर निरंतर पड़ता जा रहा है। इसका शब्द भंडार अधिक विस्तृत हो रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र तथा ज्ञान की हर विधा का माध्यम बनने की सामर्थ्य इसमें आ गई है। इसकी प्रौढ़ता व सर्वांगपूर्णता के कारण विश्व की भाषाओं में इसका स्थान बहुत ऊंचा है। खड़ी बोली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। यह बांगरू, ब्रज तथा पहाड़ी भाषाओं से घिरी हुई है। आज की परिनिष्ठित हिन्दी–उर्दू इसी पर आधारित है। नाटक, लोकगीत, लोककथा की दृष्टि से यह बोली काफी सम्पन्न मानी जाती है। कौरवी की मुख्य उपबोलियाँ–पश्चिमी कौरवी, पूर्वी कौरवी, पहाड़ताली तथा बिजनौरी में से बिजनौरी को शुद्ध रूप माना जाता है। खड़ी बोली के दो भेद हैं–बोलचाल की ग्रामीण खड़ी बोली और साहित्यिक खड़ी बोली (हिंदी)। ग्रामीण खड़ी बोली गंगा–यमुना दोआब के उत्तरी भाग में बोली जाती है। जिसमें

देहरादून, सहारनपुर, मेरठ, बुलंदशहर जिले आते हैं। खड़ी बोली (हिन्दी), बिजनौर, रामपुर और मुरादाबाद के उत्तरी भाग में बोली जाती है :

खड़ी बोली (हिन्दी) की विशेषताएं

क) साहित्यिक हिंदी का ऐ, औ ग्रामीण खड़ी बोली में ए, ओ हो जाती हैं, जैसे पैर–पेर, बैठे–बेठ, और–ओर।

ख) स्वराघातहीन आरंभिक 'इ' का कभी लोप हो जाता है तो कभी 'अ' में परिवर्तन हो जाता है जैसे, इक्ट्ठा–कट्ठा, मिठाई–मठाई।

ग) अनेक शब्दों में आदि स्वर का लोप मिलता है। असाढ़–साढ़, अंगूठा–गूंठा।

घ) दो महाप्राण ध्वनियॉ पास आने पर परवर्ती ध्वनि अल्प प्राण हो जाती हैं, जैसे भीख–भीक, घूंघट–घूंगट।

ड.) शब्द के मध्य से 'ह' ध्वनि भी लुप्त हो जाती है, जैसे साहब–साब, दुल्हन–दुलन।

च) संख्यावाचक विशेषण शुद्ध हिन्दी जैसा ही हैं, किन्तु कुछ उच्चारणों में अंतर है, जैसे च्यार, ग्यारै, चौदै, सौलै।

ब्रजभाषा

'ब्रज' शब्द का पुराना अर्थ 'पशुओं का समूह' या 'चारागाह' है। पशुपालन के प्राधान्य के कारण यह क्षेत्र कदाचित् ब्रज कहलाया और इसी आधार पर इसकी बोली ब्रज भाषा या ब्रजी कहलाई। ब्रज भाषा पश्चिमी हिंदी की सर्वाधिक समृद्ध, सशक्त और समर्थ बोली है। इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुई है। यह भाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ़, मैनपुरी, धौलपुर, एटा, बदायूॅं, बरेली तथा आसपास के क्षेत्र में बोली जाती है। इसकी मुख्य उप बोलियाँ भुक्सा, अंतर्वेदी, भरतपुरी, डांगी, मथुरा इत्यादि हैं। इसकी लिपि देवनागरी है। यह साहित्य और लोक साहित्य दोनों दृष्टियों से संपन्न भाषा है। हिंदी प्रदेश के बाहर भी भारत के अनेक क्षेत्रों में ब्रज भाषा में साहित्य रचाना मिलती है। इसके प्रमुख कवियों में सूरदास, तुलसीदास, नंददास, रहीम, रसखान, बिहारी, देव, रत्नाकर आदि आते हैं। आधुनिक काल में भारतेंदु, रत्नाकर, कविरत्न आदि कवियों ने अपना साहित्य ब्रज भाषा में लिखा। इसमें संज्ञा, विशेषण और क्रियापदों के रूप ओकरांत मिलते हैं, जैसे हिंदी झगड़ा–ब्रज झगरो, बसेरा –बसेरो। 'ठ' और 'ल' की जगह 'र' का प्रयोग मिलता है, जैसे हिन्दी दुबला–ब्रज दुवरो, भोली–भोरी। 'ह' का लोप तथा 'श', 'ष', के स्थान पर मात्र 'स' मिलता है। इसमें 'ड़' के स्थान पर 'र' मिलता है जैसे लड़का–लरका, साड़ी–सारी। ब्रजभाषा के संख्यावाचक शब्द कुछ विशेष उच्चारण के साथ हिन्दी जैसे ही हैं–एकु, द्वै, तीन, चारि, छै।

हरियाणी

इसका विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। यह रोहतक, करनाल, पटियाला, नाभा, जींद, हिसार और दिल्ली के आस–पास बोली जाती है। करनाल के आसपास का क्षेत्र बांगर कहलाता है, जिसके कारण डॉ. ग्रियर्सन ने इसे 'बांगरू' नाम दिया। यह खड़ी बोली, अहीरवाटी, मारवाड़ी, पंजाबी आदि से घिरी हुई है। इसकी मुख्य उपबोलियाँ जाटू तथा बांगरू हैं। हरियाणी में केवल लोक साहित्य है जिसका कुछ भाग प्रकाशित हो चुका है। पहले यह उर्दू लिपि में लिखी जाती थी, परंतु अब इसके लिए नागरी लिपि का प्रयोग हो रहा है। इसमें इ, उ का सीमित प्रयोग है तथा ऐ, ओ, प्रायः मूल स्वर के रूप में प्रयुक्त होते हैं। श, ष, ढ़, ह व्यंजनों को छोड़कर सभी ध्वनियां हैं। इसमें 'न' के स्थान पर 'ण' मिलता है, जैसे पानी–पाणी। 'त' के स्थान पर 'द' मिलता है, जैसे करता–करदा, मारता–मारदा अनेक स्थानों पर 'ड़' का 'ड' (बडा, पेड), सहायक क्रिया हूं, है, हैं, हो के स्थान पर सूं, सै, सैं, सो तथा 'को' के स्थान पर 'ने' (राम ने जाना है) आदि इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं।

बुंदेली

बुन्देल राजपूतों का क्षेत्र होने के कारण इस प्रदेश को 'बुंदेलखंड' और यहाँ पर बोली जाने वाली भाषा को 'बुंदेलखंडी' कहा जाता है। इसका क्षेत्र झांसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर, सिवनी, होशंगाबाद तथा आसपास का क्षेत्र है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसकी लिपि नागरी है। इस बोली के एकमात्र प्रतिष्ठित कवि 'लाल' हैं, जिन्होंने 1710 ई0 के आसपास 'छत्र प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना की थी। पद्‌माकर और केशवदास की रचनाओं में भी बुंदेली से प्रभावित ब्रज का प्रयोग किया गया है। बुंदेली में लोकसाहित्य बहुत मिलता है। इसकी उपबोलियों में बनाफरी, राठौरी, लोधांती आदि आती हैं। डॉ. धीरेंद्र वर्मा बुंदेली को ब्रज की एक उपबोली मानते हैं। इसमें ब्रज के 'ऐ' और 'औ' का 'ए', ओ (ओर, ऐसो), 'स' का 'छ' (सीढ़ी–छीड़ी), 'च' का 'स' (सांचे–साँसे), कर्म स्मप्रदान में 'को' के स्थान पर 'खों', 'खां' तथा 'के लिए'के स्थान पर 'के लाने' का प्रयोग इसकी कुछ विशेषताएं हैं। स्त्रीलिंग बनाने के लिए न, इन, ई प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है जैसे ऊंट–ऊंटनी, सुनार–सुनारिन। हिंदी के 'हूं' के स्थान पर बुंदेली में 'आँव' और 'है' के स्थान पर 'आय' तथा हैं के स्थान पर 'ऑय' का प्रयोग किया जाता है।

कन्नौजी

'कन्नौज' (संस्कृत कान्यकुब्ज) इस बोली का मुख्य केंद्र रहा है, जिसके कारण इसका नाम कन्नौजी पड़ा है। यह इटावा, फरूखाबाद, शाहजहांपुर, कानपुर, हरदोई, पीलीभीत इत्यादि जगह पर बोली जाती है। इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। ब्रजभाषा के अधिक समान होने के कारण डॉ. धीरेंद्र वर्मा इसे ब्रज भाषा की एक उपबोली मानते हैं। वास्तव में इस बोली में ग्रामीणता का आभास अधिक है। इसमें केवल लोक साहित्य ही मिलता है, जिसका कुछ अंश प्रकाशित हो चुका है। इसमें उकारांत (खातु, घरु, सबु), ओकारांत (हमारो या हमाओ),

प्रत्यय –इया (जिमिया, छोकरिया), तथा वा (बेटवा, बचवा), औ का अउ (कउन), बहुवचन के लिए 'ह वार' (हम ह वार, हम–लोग) आदि मुख्य विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इसके संख्यावाचक शब्दों में 'आ' का प्रयोग अधिक होता है जैसे बारहा, तेरहा, चौदहा।

अवधी

'अवधी' शब्द 'अयोध्या' का ही विकसित रूप है। इसका मुख्य केंद्र अवध रहा है, किंतु अब यह लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, रायबरेली, उन्नाव, सीतापुर, बहराइच, फैजाबाद, गोंडा, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी तक बोली जाती है। डॉ. ग्रियर्सन ने इसका विकास अर्धमागधी अपभ्रंश से माना है। इसे कोसली अथवा पूर्वी भी कहा जाता है। जायसी का 'पद्मावत' और गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' अवधि की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। इसके अन्य प्रसिद्ध कवि मुल्ला दाऊद, कुतुबन, उसमान आदि रहे हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इसकी छः उपबोलियाँ मानी हैं। इसमें हिंदी के सभी स्वर मिलते हैं। 'ऐ' की जगह 'अइ' तथा 'औ' का 'अउ' हो जाता है,यथा कैसे–कईसे। श, ष, के लिए मात्र 'स' का प्रयोग मिलता है। ल, ड़ के स्थान पर 'र' तथा 'ण' के स्थान पर न का प्रयोग किया जाता है, जैसे चरण–चरन, लड़ाई–लराई, कल–कर।

बघेली

बघेल राजपूतों के आधार पर रीवॉं तथा आसपास का क्षेत्र बघेलखंड और वहाँ की बोली बघेलखंडी कहलाती है। इसका मुख्य क्षेत्र रीवां होने के कारण इसे 'रीवॉंई भी कहा जाता है। इसका विकास अर्धमागधी अपभ्रंश से माना जाता है, किंतु भाषा वैज्ञानिक स्तर पर यह अवधी की ही उपबोली ज्ञात होती है। इसे बोली का क्षेत्र रीवॉं, नागोद, शहडोल, सतना, मैहर, दमोह, जबलपुर, बालाघाट, फतेहपुर, हमीरपुर, बांदा आदि है। इसमें केवल लोक साहित्य ही मिलता है। यह भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, बुंदेली, मराठी आदि बोलियाँ से घिरी हुई है। इसमें 'मुझे' के स्थान पर म्वां, मोही, तुझे के स्थान पर त्वां, तोही, विशेषण में 'हा' प्रत्यय (नीकहा), घोड़ा का ध्वाड़, मारे का म्वार, पेट का प्याट, देत का ध्यात, आदि विशेषताएं मिलती हैं। इसकी उपबोलियां तिरहारी, जुड़ार, गहोरा आदि हैं।

छत्तीसगढ़ी

इसका मुख्य क्षेत्र छत्तीसगढ़ है जिसके कारण इसका नाम छत्तीसगढ़ी पड़ा है। इसकी उत्पत्ति अर्धमागधी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप से हुई है। यह सरगुजा, बिलासपुर, रायपुर, रायगढ़, खैरागढ़, दुर्ग, नंदगांव, कांकेर इत्यादि स्थानों पर बोली जाती है। इसकी मुख्य उपबोलियाँ सुरगुजिया, सदरी, बैगानी, बिंझवाली आदि हैं।इसे लहरिया भी कहा जाता है। यह नागरी लिपि में लिखी जाती है। ग्रामीण बोली होने के कारण केवल लोक साहित्य ही मिलता है। इसके अनेक शब्दों में 'स' के स्थान पर 'छ' मिलता है, यथा सीता–छीता। इसमें श, ष, ध्वनियां नहीं मिलती हैं। अल्पप्राण ध्वनियों के स्थान पर महाप्राण ध्यानियों का प्रयोग मिलता है जैसे जन–झन, इलाका–इलाखा। स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'ई', इन, आनी, आइन प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

मारवाड़ी

यह राजस्थानी उपभाषा की बोली है, जिसका क्षेत्र मारवाड़ है। जोधपुर, अजमेर, मेवाड़, शिवगढ, बीकानेर, सिरोही, जैसलमेर आदि में यह बोली प्रचलित है। डिंगल इसका साहित्यिक रूप है। इसी 'अगरवाला' नाम से भी जाना जाता है। इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से हुई है। यह साहित्य और लोकसहित्य की दृष्टि से सम्पन्न है। मीरा के पदों की भाषा भी यही रही है। राजस्थान का अधिकत्तर साहित्य मारवाड़ी में मिलता है। इसमें सर्वनामों और क्रियाओं के रूप ब्रजभाषा से मिलते हैं। 'ण', 'ळ' ध्वनियों का विशेष महत्व है तथा दो स्वरों के बीच की 'ल' ध्वनि का उच्चारण 'ळ' होता है। 'ट' वर्ग का प्रयोग अधिक मिलता है। बहुवचन में 'ओ' लगाया जाता है।

जयपुरी

यह भी राजस्थान की उपबोली है। यह अजमेर, जयपुर, किशनगढ़ आदि में बोली जाती है। इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से ही हुई है। इसे 'झाड़साही' बोली भी कहा जाता है। इस बोली में हमें केवल लोक साहित्य ही देखने को मिलता है। इसकी विशेषताएं मारवाड़ी जैसी ही हैं।

मेवाती

गुड़गांव, अलवर, भरतपुर में मेव जाति का प्रधानतया होने के कारण वहाँ के लोगों और उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को 'मेवाती' कहा जाता है। इस पर ब्रजभाषा और जयपुरी का प्रभाव देखने को मिलता है। इसका विकास शौरसेना अपभ्रंश के उपनागर रूप से हुआ है। इसकी एक मिश्रित बोली को 'अहीरबाटी' कहा जाता है। इसमें लिखित साहित्य न के बराबर मिलता है।

मालवी

यह मालवा क्षेत्र की बोली है। इसकी उत्पत्ति भी शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। इसकी परिनिष्ठित रूप को 'अहीरी' कहा जाता है। इसका पश्चिमी हिंदी से पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। इसमें जहाँ एक तरफ लिखित साहित्य मिलता है तो वहीं दूसरी तरफ लोक साहित्य की दृष्टि से भी यह संपन्न है। इसकी उपबोलियाँ–देवास, इन्दौर, अैन, भोपाल, रतलाम, होशंगाबाद आदि हैं।

पहाड़ी

देश के पहाड़ी भागों में बोली जाने के कारण इसे पहाड़ी भाषा कहा जाता है। यह उत्तर–पश्चिम से लेकर नेपाल के पूर्वी भाग तक फैली हुई है। इसके तीन रूप मिलते हैं–पश्चिमी पहाड़ी, मध्यवर्ती पहाड़ी ओर पूर्वी पहाड़ी। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इसे शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से विकसित माना है। यह शिमला, चंबा, मंडी, जौनसार, सिरमौर, नैनीताल, देहरादून, उत्तरकाशी, बिजनौर, गढ़वाल, कुमायूँ और आसपास में बोली जाती है। इसकी मुख्य

उपबोलियाँ जौनसारी, सिरमौर, नेपाली, क्योंठली, चम्याली, कुमायूँनी और गढ़वाली आदि हैं, किंतु साहित्यिक महत्त्व केवल नेपाली और कुमायूँनी का ही है। अन्य बोलियों में केवल लोक साहित्य ही मिलता है। यह नागरी लिपि में लिखी जाती है। इस पर राजस्थानी का प्रभाव देखने को मिलता है। कुछ लोग खस अपभ्रंश से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। इसमें पुल्लिंग संज्ञाएं प्रायः ओकारांत हो जाती हैं। कुमायूँनी में 'क्ष' कहीं पर क, ख, छ में परिवर्तित हो जाता है, जैसे राक्षस–राकस, क्षेत्र–खेत, लक्ष्मण–लछ्मण। गढ़वाली में स्त्रीलिंग बनाने के लिए ई, आण, ण, णी, री आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है तथा 'ह' का इसमें लोप हो जाता है, यथा शहर–शैर।

भोजपुरी

यह बिहारी उपभाषा की प्रमुख बोली है। बिहार के शाहाबाद जिले के भोजपुर गांव के नाम के आधार पर इसे भोजपुरी नाम दिया गया। इसका विकास मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। यह गाजीपुर, गोरखपुर, बलिया, देवरिया, आजमगढ़, बस्ती, शाहाबाद, चम्पारन, सहारन, बनारस, जौनपुर तथा मिर्जापुर में बोली जाती है। साहित्य की दृष्टि से यह संपन्न बोली है। रघुवीर नारायण, बाबूराम कृष्ण वर्मा, रविदत्त शुक्ल, भिखारी ठाकुर आदि आधुनिक भोजपुरी लेखक है। बिहार का प्रभाव होने के साथ–साथ यह हिंदी के अधिक निकट है। इसकी प्रधान उपबोलियाँ चार हैं–उत्तरी भोजपुरी, दक्षिणी भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी और नगपुरिया। इसमें 'ण' का प्रयोग नहीं होता है। 'ल' और 'ड़' की जगह 'र' (पीतल–पीतर), 'स', 'श' के स्थान पर 'ह' (मास्टर–माहटर) का प्रयोग होता है। इसमें क्रिया विशेषण के लिए इंहां, इंहवां, उंहां, जाहां, ताहां आदि का प्रयोग किया जाता है।

मगही

यह 'मगही' शब्द का ही विकसित रूप है। इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। यह पटना, गया, हजारीबाग, मुंगेर और भागलपुर के पूर्वी भागों में बोली जाती है। इसमें लिखित साहित्य नहीं है, लेकिन लोकसाहित्य पर्याप्त है, जिसमे 'गोपीचंद' और 'लोरिक' प्रसिद्ध है। यह 'कैथी' और 'नागरी' लिपि में लिखी जाती है। इसमें स्त्रीलिंग बनाने के लिए ई, इया, इन, आइन, नी, ऐनी आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। यहाँ 'ल' का 'र' (मछली–मछरी), 'ऐ' और 'औ' का 'अउ' या 'अव्' तो कभी 'अइ' या 'अय' (मैदान–मइदान, दौड़–दउड़) हो जाता है। इसमें हिंदी के यहां के लिए ईठमा, इठवां और वहां के लिए ऊठमां, उठमां, उठवां आदि का प्रयोग होता है।

मैथिली

यह बिहार के मिथिला क्षेत्र की बोली है। इसका विकास मागधी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है। यह दरभंगा, पूर्णिया, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, पूर्वी चम्पारण, उत्तरी संथाल परगना में बोली जाती है। इसकी छः उपबोलियों में उत्तरी मैथिली, दक्षिणी मैथिली, पूर्वी मैथिली, पश्चिमी मैथिली, छिकाछिकी और जोलहा हैं। बिहारी की बोलियों में केवल मैथिली ही साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न है। इसके प्रसिद्ध कवि विद्यापति हिंदी के विभूति हैं। इसके अतिरिक्त गोविन्द दास, लोचन, उमापति, रामदास, रमापति, नंदीपति, महीपति तथा मनबोध झा आदि प्रधान है।

आधुनिक साहित्यकारों में रघुनन्दन दास, सीताराम झा, मोतीलाल दास, भुवन, सुमन आदि उल्लेखनीय हैं। नागरी के अतिरिक्त बंगला से मिलती–जुलती मैथिली और कैथी लिपियों का प्रयोग हो रहा है, किंतु साहित्य सृजन केवल नागरी लिपि में ही किया जा रहा है। इसमें भोजपुरी की भांति संज्ञा तथा विशेषण के तीन रूप मिलते हैं। ई, इया, ईवा, आइन प्रत्ययों के जुड़ने से स्त्रीलिंग बनाए जाते हैं, जैसे नेनिया (लड़की), पंडिताइन। पुरूषवाचक सर्वनामों में हम, हमार, तो, तोहार, अपन, अपनहि, इत्यादि रूप प्रयुक्त होते हैं।

15.6 कठिन शब्द

संहिता, स्वराघात, विवर्तन, उदीच्य, परिनिष्ठित, विश्लिष्ट, प्राच्य, समुचित, विकृत, आरोह, युक्तियुक्त, अस्तित्व, परवर्ती, अन्तर्मुक्त, विशुद्ध, कर्कश, अल्पप्राण, महाप्राण, दृष्टिगोचर।

15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र01) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ. ____

____

____

____

प्र02) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं पर प्रकाश डालिए।

उ. ____

____

____

____

प्र03) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

उ. ____

____

____

____

प्र04) हिन्दी की उपभाषाओं के वर्गीकरण पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

उ. ____

____

____

____

प्र05) हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।

उ. ____

____

____

____

15.8 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

1. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान।
2. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास।
3. डदयनारायण तिवारी, भाषाशास्त्र की रुपरेखा।
4. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा।
5. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की संरचना।
6. कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय, आधुनिक भाषा विज्ञान।
7. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, हिन्दी भाषा संरचना के विविध आयाम।

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

16.0 रूपरेखा

16.1 उद्देश्य

16.2 प्रस्तावना

16.3 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

16.3.1 वर्णमाला का वर्गीकरण।

16.3.2 लिपि-चिह्नों के नाम ध्वनि के अनुरूप

16.3.3 एक ध्वनि के लिए एक लिपि-चिह्न।

16.3.4 लिपि-चिह्नों की पर्याप्तता।

16.3.5 ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर के लिए स्वतन्त्र चिह्न

16.3.6 मात्राओं का प्रयोग

16.3.7 नागरी के व्यंजन चिह्नों की आक्षरिकता

16.3.8 उच्चारण की दृष्टि से समान लिपि चिह्नों में आकृति की समानता।

16.3.9 सुपाठ्यता।

16.4 सारांश

16.5 कठिन शब्द

16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें

16.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप देवनागरी लिपि की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

16.2 प्रस्तावना

देवनागरी भारत की प्रधान लिपि है। संविधान ने इसे राजलिपि का पद प्रदान किया है। हिन्दी और हिन्दी बोलियाँ ही नहीं, मराठी और नेपाली भी इसी लिपि में लिखी जाती हैं। सारा संस्कृत वाङ्गमय देवनागरी में मिलता है। बहुत सा पंजाबी और गुजराती साहित्य भी वर्तमान युग में इस लिपि में लिखा जा रहा है। हज़ारों बंगाली और द्रविड भाषाभाषी भी देवनागरी लिपि से परिचित हैं। लगभग सभी राष्ट्रवादी मनीषियों का मत है कि सब भारतीय भाषाओं में एक ही लिपि हो तो तत्तद् भाषा के साहित्य का अधिकाधिक प्रचार और भावात्मक एकता का प्रसार हो एवं वह लिपि नागरी ही हो सकती है, क्योंकि प्राय: सभी प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य इसमें लिखा ही जा रहा है। अशोक के समय में भी भाषाएँ भले ही अनेक थीं, लिपि एक ही थी। मुसलमानी शासनकाल में भी सारे साम्राज्य की एक ही लिपि देवनागरी होती थी।

16.3 देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ और गुण निम्नांकित हैं।

16.3.1 वर्णमाला का वर्गीकरण

विश्व के किसी भी कोने में प्रयुक्त वर्णमाला उतने वैज्ञानिक रूप में विभाजित या वर्गीकृत नहीं है जितने वैज्ञानिक रूप में नागरी आदि भारतीय लिपियाँ या उनसे सम्बद्ध या विकसित लिपियाँ हैं। उर्दू या रोमन लिपि भी इस कमी का अपवाद नहीं हैं। इनमें भी स्वर एवं व्यंजन (अलिफ़ बे, डी, ई, एफ आदि) या व्यंजन के वैज्ञानिक वर्ग (लाम, मीम, सी, डी आदि) मिले-जुले रूप में रखे गये हैं। नागरी में इस प्रकार की गड़बड़ी नहीं है। स्वर अलग हैं, और व्यंजन अलग। स्वरों में भी ह्रस्व-दीर्घ के युग्म (अ-आ, इ-ई, उ-ऊ) साथ-साथ हैं। समवेतत: प्रारम्भ में मूल स्वर (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ) हैं, और उनके बाद संयुक्त स्वर (ए, ऐ, ओ, औ, संस्कृत में ये चारों संयुक्त स्वर हैं, उसी के आधार पर इन्हें अलग अंत में रखा गया है) व्यंजनों, विशेषत: स्पर्श एवं अनुनासिक का विभाजन तो और भी वैज्ञानिक है। क, च, ट, त, प के वर्ग स्थान पर आधारित हैं, और हर वर्ग के व्यंजन घोषत्व के आधार पर दो प्रकार के हैं : प्रथम दो अघोष तथा अंतिम तीन घोष। इनके साथ ही इनके वर्गीकरण या विभाजन में प्राणत्व का भी ध्यान रखा गया है। पहले, तीसरे और पाँचवें, अल्पप्राण हैं तथा दूसरे, चौथे महाप्राण। अनुनासिक व्यंजन वर्गों के अन्त में हैं। अंत में अंतस्थ हैं।

16.3.2 लिपि-चिह्नों के नाम ध्वनि के अनुरूप

नागरी में यह बहुत बड़ी विशेषता है कि जो लिपि-चिह्न जिस ध्वनि का द्योतक है, उसका नाम भी वही है, जैसे आ, ओ, क, ब, थ आदि। रोमन में ऐसा न होने से भाषा सीखने वाले व्यक्ति को बहुत कठिनाई होती है, और याद करना पड़ता है कि कौन चिह्न किस ध्वनि के लिए आता है। इस दृष्टि से रोमन में लिपि-चिह्न तीन प्रकार के हैं : (१) लिपि-चिह्न नाम का या उसकी प्रथम ध्वनि का काम करता है; जैसे ए, बी, सी, डी, जी, जे, के, ओ, पी, क्यू, टी, वी, जेड। (२) लिपि-चिह्न प्रायः दूसरी ध्वनि का काम करता है, जैसे एफ, आइ, एल, एम, एन, आर, एस, यू, एक्स। (३) लिपि-चिह्न नाम में आई किसी भी ध्वनि का काम न कर किसी अन्य ध्वनि का कार्य करता है, जैसे एच (ह), ए (अ, आ, ऐ), सी (क), डब्ल्यू (व) वाई (य)। यों तो नागरी की तुलना में तीनों ही प्रकार के नाम अवैज्ञानिक हैं, किन्तु अन्तिम वर्ग तो सर्वाधिक अवैज्ञानिक है। उर्दू लिपि में यह अवैज्ञानिकता इतनी अधिक तो नहीं है, किन्तु नागरी की तुलना में अधिक अवश्य है। उसके अधिकांश चिह्न प्रथम वर्ग में आते हैं।

16.3.3 एक ध्वनि के लिए एक लिपि-चिह्न

अच्छी या वैज्ञानिक लिपि में यह विशेषता बहुत आवश्यक है। यों किसी भी लिपि में अपने आप यह विशेषता सर्वदा नहीं रह सकती। इसका कारण यह है कि किसी भाषा के प्रसंग में उच्चारण स्तर पर ही हर ध्वनि के लिए एक चिह्न की बात की जा सकती है, और भाषा की ध्वनियाँ उच्चारण की दृष्टि से विशेषता परिवर्तित होती रहती है, जिसका आशय यह हुआ कि एक समय किसी लिपि में यह विशेषता हो सकती है, और दूसरे समय उच्चारण में अन्तर हो जाने के कारण इसका अभाव हो सकता है। इसी प्रकार एक भाषा के प्रसंग में लिपि में यह विशेषता हो सकती है, और दूसरी भाषा के प्रसंग में नहीं हो सकती। इसका आशय यह हुआ कि इसका सम्बन्ध लिपि के अपने आंतरिक गुण से विशेष न होकर उसके प्रयोग से है। पहले हम उर्दू लिपि की बात लें। उर्दू लिपि में यह विशेषता नहीं है। उदाहरणार्थ 'स', ध्वनि के लिए उर्दू में तीन लिपि-चिह्न हैं : 'से', 'स्वाद', 'सीन'। इसी प्रकार 'ज' के लिये 'जे', 'ज़ाल', 'जोय', 'ज्वाद' अर्थात् चार; या यदि 'झे' को भी मिला लें तो पाँच लिपि-चिह्न हैं; 'त' और 'ह' के लिए भी दो (ते, तोय) दो (बड़ी हे, छोटी हे), हैं। यों मूल अरबी में इन सब का स्वतन्त्र उच्चारण था, किन्तु उर्दू में आकर वहाँ की वैज्ञानिकता अवैज्ञानिकता में परिवर्तित हो गई है। अंग्रेजी में भी यह गड़बड़ी है। उदाहरण के लिए 'क' ध्वनि के लिए कभी K (Kite), कभी C (Coat), कभी Ch (Chemist), कभी CK (check) कभी Q (cheque) तथा कभी अंशतः X (box) का प्रयोग होता है। इसी प्रकार श (sh, si, ti आदि); फ़ (f, ph) इ (i, y-system, e-committee, o-women, u-minute आदि), ओ, उ, अ, स (S, C अंशतः X) आदि के लिये भी एक से अधिक लिपि-चिह्नों का प्रयोग होता है। इस प्रसंग में यह उल्लेख्य है कि यह गड़बड़ी अंग्रेज़ी में प्रयुक्त रोमन की है किन्तु मूल रोमन भी इन अवगुणों (स

= c, s, x; क = k, x आदि) से पूर्णतः शून्य नहीं है। नागरी लिपि में मूलतः यह अवगुण बिल्कुल नहीं था। अब हिन्दी आदि के प्रयोग में कुछ अवगुण (ऋ-रि, श-ष) अवश्य आ गया है, किन्तु उर्दू या अंग्रेजी की तुलना में यह बहुत ही कम है। यही कारण है कि कुछ अपवादों को छोड़कर हिन्दी की वर्तनी उस रूप में रटने की आवश्यकता नहीं है, जैसे अंग्रेजी या उर्दू की रटनी पड़ती है।

यहाँ एक ध्वनि के लिए एक से अधिक लिपि-चिह्नों की बात की जा रही थी। इस प्रसंग में एक दूसरी गड़बड़ी की ओर भी संकेत किया जा सकता है। उर्दू तथा रोमन आदि में एक लिपि-चिह्न एक से अधिक ध्वनियों को व्यक्त करते हैं। उदाहरणार्थ अलिफ़ 'अ' को भी व्यक्त करता है, 'आ' को भी, और कभी-कभी 'इ' (बिल्कुल) को भी। इसी प्रकार 'वाव', व, ऊ, ओ, औ तथा 'ये' य, ए, ऐ आदि। इसका परिणाम यह हुआ है कि कभी-कभी उर्दू पढ़ना टेढ़ी खीर हो जाती है। उर्दू लिपि के सम्बन्ध में इसी कारण अनेक चुटकले मशहूर हैं; जैसे 'आलु बुखारे' को किसी ने 'उल्लू बेचारे' पढ़ा तो 'अब्बा अजमेर गये' को अब्बा आज मर गये' या 'कोड़े' को 'कूड़े' आदि। अंग्रेज़ी में प्रयुक्त रोमन भी इस दृष्टि से उर्दू से पीछे नहीं है। इसमें भी बहुत से लिपि-चिह्न ऐसे हैं जो एक से अधिक ध्वनियों को व्यक्त करते हैं। उदाहरण c =स, क; g = ग, ज; a अ, आ, ऐ आदि; e = ए, इ (पैकिट); u = अ, उ, यो आदि। यही कारण है कि अंग्रेज़ी में उच्चारण याद करना पड़ता है; put = पुट, but = बट। इस प्रकार अंग्रेज़ी, उर्दू आदि में शब्द की वर्तनी और उसके उच्चारण का वह सहज एवं वैज्ञानिक सम्बन्ध नहीं है जो नागरी में है। इस तरह नागरी में यह लेखन और उच्चारण का अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक सम्बन्ध निश्चय ही बहुत बड़ी विशेषता है अर्थात् अपवादों को छोड़कर इसमें एक ध्वनि के लिए एक लिपि-चिह्न है, या एक लिपि-चिह्न एक ही ध्वनि को व्यक्त करता है, जबकि उर्दू या रोमन में यह बात नहीं है। अंग्रेज़ी में वर्तनी और उच्चारण की इस असमानता से परेशान होकर ही अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध नाटककार जॉर्ज बर्नर्ड शॉ ने अपनी सम्पति का काफ़ी बड़ा भाग अंग्रेज़ी में इस दृष्टि से सुधार करने के लिए दिया था। एक लिपि विशेषज्ञ ने उनकी इच्छा के अनुसार अंग्रेज़ी के लिए रोमन में कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धन करके एक नई लिपि बनाई भी थी। इसी विशेषज्ञ ने इधर अंग्रेज़ी के लिए एक नई वर्णमाला तैयार की, जिसका नाम 'क्विट स्क्रिप्ट' रखा। इस नई वर्णमाला में 40 लिपि-चिह्न हैं। अंग्रेज़ी के लिए, इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य वर्णमालाएँ बनाने के प्रयास हो चुके हैं, और ये सारे प्रयास अंग्रेज़ी में प्रयुक्त रोमन की अपूर्णता के ही प्रमाण हैं।

16.3.4 लिपि-चिह्नों की पर्याप्तता

विश्व की अधिकांश लिपियों में चिह्न नहीं हैं, अंग्रेज़ी में ध्वनियाँ 40 से ऊपर हैं, किन्तु केवल 26 लिपि-चिन्हों से काम चलाना पड़ता है। उर्दू में भी ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, ढ़, थ, ध, फ, भ आदि के लिए लिपि-चिह्न नहीं हैं, और 'हे' से मिलाकर इनका काम चलाते हैं। इस दृष्टि से नागरी तथा ब्राह्मी से विकसित अन्य कई भारतीय लिपियाँ पर्याप्त सम्पन्न हैं। नागरी का प्रयोग जिन-जिन भाषाओं के लिए हो रहा है, यदि अपवादतः कुछ नव विकसित ध्वनियों (न्ह, म्ह, ल्ह)

को छोड़ दें तो इस दृष्टि से इसमें कोई कमी नहीं है। ऐसी स्थिति में यदि हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं को रोमन या उर्दू आदि में लिखना हो तो अनेक ध्वनियों के लिए प्राय: दो लिपि-चिह्नों को मिलाकर लिखने की परेशानी उठानी पड़ेगी, जब कि नागरी में उन सभी के लिए स्वतंत्र चिह्न हैं। उदाहरण के लिए ख, घ, छ, झ, ठ आदि सभी महाप्राण ध्वनियों को रोमन में के, जी आदि में 'एच' मिलाकर तथा उर्दू में काफ़, गाफ़ आदि में 'हे' मिलाकर लिखते हैं। ऐसी स्थिति में इन लिपियों में एक ध्वनि के दो पढ़े जाने की आशंका बनी रहती है। Aghan 'अघन' भी है और 'अगहन' भी। उर्दू में भी यही स्थिति है। इसी प्रकार नागरी में लिखित 'आबहवा' को 'आबहवा' ही पढ़ा जाएगा, किन्तु रोमन (abhava) को अभाव, अभवा, अभावा आदि कई रूपों में पढ़ा जा सकता है। इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं, किन्तु नागरी में ऐसी परेशानी नहीं है। निष्कर्षत: लिपि-चिह्नों की पर्याप्तता की दृष्टि से भी नागरी रोमन या उर्दू आदि से बहुत सम्पन्न है। यह विशेषता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

16.3.5 ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर के लिए स्वतन्त्र चिह्न

इस दृष्टि से रोमन और नागरी का कोई मुकाबला नहीं है। रोमन में ए (A) अक्षर से 'अ' का भी काम लेते हैं, और 'आ' का भी। kam, 'कम' भी है और 'काम' भी, या 'kala' कला भी और काला भी। अंग्रेज़ी लेखन में यू (u) 'उ' (put) भी है और ऊ (truth) भी। नागरी में अ-आ इ-ई, उ-ऊ में स्पष्ट अन्तर है अत: रोमन की भांति भ्रम की गुंजाइश नहीं है। दो 'ई' (ee) या दो ओ (oo) से 'ई' 'ऊ' को व्यक्त करना वस्तुत: रोमन लिपि का अपना मूलभूत गुण नहीं है, जैसा कि नागरी में है यह पद्धति तो एक प्रकार से बैसाखी है जिसके सहारे लँगड़ी रोमन लिपि को काम चलाने के लिए खड़ी कर लेते हैं। उर्दू में भी एक सीमा तक यह दुर्गुण है। वस्तुत: दो लिपि चिह्नों को मिलाकर किसी एक मूल ध्वनि को व्यक्त करना मूलत: अवैज्ञानिक पद्धति है। संयुक्त ध्वनि को ही एक से अधिक चिह्न मिलाकर प्रकट किया जाना चाहिए। तो यह विशेषता भी नागरी में है।

16.3.6 मात्राओं का प्रयोग

नागरी लिपि में स्वर यदि स्वतंत्र रूप से आते हैं, तो पूरे वर्ण-चिह्न का प्रयोग होता है (आग, ईद, गाउन आदि), किन्तु व्यंजन के साथ, 'अ' के अतिरिक्त अन्य सभी का मात्रा-रूप (नाग, लीद, चतुर आदि) प्रयुक्त होता है। इसके कारण चिह्नों की संख्या में वृद्धि तो हो गई है, और कुछ दृष्टियों से (जैसे एक ध्वनि के लिए एक से अधिक चिह्न) यह अवैज्ञानिक भी है, किन्तु इससे यह सुविधा है कि स्थान कम घिरता है। यदि मात्राओं का प्रयोग न होता तो 'काला' को 'क्आल्आ' या 'कुली' को 'क्उल्ई' लिखना पड़ता। रोमन की तुलना में भी इससे प्राय: स्थान कम घिरता है : काला- KALA, बालू BALOO। हाँ, ऊपर-नीचे मात्रा के कारण कुछ असुविधा भी है तो यह विशेषता एक सीमा तक गुण है और एक सीमा तक अवगुण।

16.3.7 नागरी के व्यंजन-चिह्नों की आक्षरिकता

नागरी का हर व्यंजन-चिह्न व्यंजन न होकर 'व्यंजन' और 'अ' स्वर का योग है; जैसे क = क + अ; ख = ख + अ आदि। लिपि का ऐसा होना 'आक्षरिकता' है। अर्थात् व्यंजन-चिह्न वस्तुत: 'अक्षर' हैं। 'अक्षर का यहाँ अर्थ है व्यंजन और स्वर का संयुक्त रूप। नागरी लिपि की यह विशेषता' एक दृष्टि से तो अवगुण है, किन्तु स्थान कम घेरने की दृष्टि से यह गुण भी है। उदाहरण के लिए कमल Kamala, निर्मल Nirmala, केवल Kewala आदि ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनसे नागरी में रोमन की तुलना में कम स्थान घिरता है। तो यह विशेषता भी एक सीमा तक गुण है और एक सीमा तक दुर्गुण।

16.3.8 उच्चारण की दृष्टि से समान लिपि-चिह्नों में आकृति की समानता

वैज्ञानिकता की दृष्टि से लिपि में यह विशेषता गुण माना जानी चाहिए। यों विश्व में कोई भी ऐसी लिपि नहीं है, जो इस दृष्टि से पूर्ण हो। रोमन में तो यह गुण प्राय: नहीं के बराबर (P-B, अपवाद है) ह, उर्दू में कुछ है (बे-पे, काफ़-गाफ़, जीम-चे) किन्तु नागरी में अपेक्षाकृत कुछ अधिक है : ट-ठ-ड-ढ-ड़-ढ, प-फ-ब-भ-म, च-ज आदि।

16.3.9 सुपाठ्यता

सुपाठ्यता किसी भी लिपि के लिए अनिवार्यत: आवश्यक गुण है। इस दृष्टि से देवनागरी बहुत वैज्ञानिक लिपि है। रोमन की तरह उसमें mal को मल, माल, मैल पढ़ने की परेशानी उठाने की संभावना ही नहीं है। उर्दू में भी 'तर', 'तिर' 'तुर' या 'जूता' को 'जोता' 'जौता' 'जूता' आदि कई रूपों में पढ़ने की गलती प्राय: हो जाती है, किन्तु देवनागरी में यह अवैज्ञानिकता नहीं है।

16.4 सारांश

इस प्रकार अनेक दृष्टियों से नागरी लिपि अत्यंत वैज्ञानिक है तथा इसकी कई विशेषताएँ अन्य लिपियों में दुर्लभ हैं।

16.5 कठिन शब्द

1) प्राणत्व

2) दुर्लभ

3) अपवाद

4) दुर्गुण

5) पद्धति

6) संयुक्त

16.6 अभ्यासार्थ-प्रश्न

प्र०1) देवनागरी लिपि की विशेषताएँ बताइए ?

उ. ____

____

____

____

____

____

प्र०2) देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता पर विचार कीजिए ?

उ. ____

____

____

____

____

____

16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें

1. उदयनारायण तिवारी, भाषाशास्त्र की रूपरेखा।
2. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान
3. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा
4. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास
5. कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय (1977), आधुनिक भाषा विज्ञान
6. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, हिंदी भाषा संरचना के विविध आयाम
7. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की ध्वनि संरचना।
8. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की संरचना।

––––

देवनागरी लिपि का मानकीकरण

17.0 रूपरेखा

17.1 उद्देश्य

17.2 प्रस्तावना

17.3 देवनागरी लिपि : मानकीकरण

17.3.1 मानक हिन्दी वर्णमाला

17.3.2 मानक हिन्दी वर्तनी

17.4 सारांश

17.5 कठिन शब्द

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.7 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें

17.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप

देवनागरी लिपि की वर्णमाला में मानकीकरण को जान सकेंगे।

हिन्दी भाषा वर्तनी सम्बन्धी नियमों से अवगत हो सकेंगे।

17.2 प्रस्तावना

भारत के संविधान की धारा 343 में उल्लेख है कि देवनागरी में लिखी हिन्दी भाषा संघ की राजभाषा होगी। इसके साथ भाषा का प्रयोग बढ़ा। टंकण, मुद्रण, कंप्यूटर में प्रयोग आदि विविध नये क्षेत्रों में इस भाषा के प्रयोग का विस्तार हुआ और यह अनुभव किया गया कि सहज रूप में काम करने के लिए इसमें आवश्यक संशोधन और परिवर्तन करने की आवश्यकता है। इस प्रक्रिया

को लिपि का मानकीकरण कहा जाता है। मानकीकरण वही व्यवस्था है जिसमें किसी एक स्वीकृत रूप का प्रस्ताव किया जाता है। मानक रूप का प्रस्ताव यांत्रिक भी नहीं है, यह प्रक्रिया भाषा की परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखकर ही की जाती है।

17.3 देवनागरी लिपि : मानकीकरण

लिपि का ही एक मूलभूत अंग वर्तनी माना जाता है। वर्तनी से लिपि को दृश्य स्वरूप प्राप्त होता है और लिपि से भाषा को। इस प्रकार किसी भी मानक अथवा परिनिष्ठित भाषा के गठन एवं गत्यात्मकता में लिपि तथा वर्तनी का अहम् योगदान रहता है। वर्णों की माप और बनावट के मानक के अभाव में कम्प्यूटर द्वारा सूचना प्रसारण और मुद्रण आदि प्रभावित हो सकते हैं तो वर्तनी के मानकीकरण के अभाव में शब्दकोश निर्माण कार्य जटिल हो सकता है।

भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के अधीन हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए स्थापित केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने 1967 में देवनागरी नामक प्रकाशन में मानक हिन्दी वर्णमाला और वर्तनी को अन्तिम रूप दिया।

17.3.1 मानक हिन्दी वर्णमाला

एक अच्छी लिपि के गुणों के सन्दर्भ में देवनागरी लिपि की वर्णमाला में मानकीकरण के निम्नांकित पक्ष हैं-

(1) **एकरूपता**-एक ही वर्ण को कई ढंग से लिखा जाए तो पाठकों, मुद्रकों और अध्येताओं को कठिनाई हो सकती है। निदेशालय ने परिवर्धित देवनागरी में अ, क्ष, ण आदि को मानक घोषित किया है और आदि वर्णों-प्र, ण आदि को नकारा है।

(2) **सरलीकरण**-निदेशालय ने ड्ड, ह्य, ह्म, द्य आदि पुराने जुड़े हुए अक्षरों की जगह पर हलंत से ड्‌ड, ह्‌य, ह्‌म, द्‌य आदि गुच्छ बनाने की सिफारिश की है। साथ ही अन्त, पन्थ, बन्द आदि के स्थान पर अनुस्वार से अंत, पंथ, बंद, अंध आदि शब्द लिखने की सिफारिश की है ताकि इसे आसानी से पढ़ा-लिखा जा सके। यांत्रिक साधनों के प्रयोग हेतु सरलीकरण करना अनिवार्य हो जाता है।

(3) **वैज्ञानिकता**-अवैज्ञानिक लिपि से भ्रम पैदा होता है और इससे भाषा का उपयोग बाधित होता है। इसीलिए रव के पूर्व रूप की अपेक्षा ख को मानक माना गया है। ताकि 'रवाना' न समझा जा सके। इसी प्रकार म की अपेक्षा भ को मानक माना गया है ताकि त्वरित लेखन में इससे म का भ्रम न हो सके।

(4) **सार्वभौमता**-हिन्दी में अभी इस गुण का अभाव है। रोमन लिपि में कंप्यूटर से लिखी गई सामग्री को आप अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कहीं भी पढ़ सकते हैं क्योंकि इसके html नामक

सामान्य मानक का विकास किया गया है। हिन्दी में इस मानक के अभाव के कारण कम्प्यूटरों के बीच सामग्री का आदान-प्रदान सुगमता से नहीं हो रहा है।

हिन्दी में निम्नलिखित वर्ण और चिह्न लेखन में प्रयुक्त हो रहे हैं परन्तु वर्णमाला में इनका स्थान निश्चित नहीं है। जैसे-ड़, ढ़, ज़, फ़, ख़ क़ आदि। वर्णमाला में इनका स्थान निश्चित करने से कम्प्यूटर के लिए मानक कुंजीपटल तैयार कर पायेंगे। शब्दकोशों में इनके क्रम में कोई अंतर नहीं। लेकिन इन्हें हिन्दी के दो अलग वर्ण माने तो इनका स्थान अलग होना चाहिए।

17.3.2 माणक हिन्दी वर्तनी

हिन्दी भाषा वर्तनी सम्बन्धी नियम इस प्रकार हैं-

(1) संयुक्त वर्ण

(क) खड़ी पाई वाले व्यंजनों का संयुक्त रूप खड़ी पाई को हटाकर ही बनाया जाये। यथा-न्याय, व्यवहार ध्यान, प्याला आदि।

(ख) क और फ के संयुक्ताक्षर पक्का, दफ्तर आदि रूप में बनाये जाये।

(ग) ड, छ, ठ, ट, ड, ढ और ह के संयुक्ताक्षर हल चिह्न लगा कर बनाये जायें। यथा-बह्मा, चिह्न, वाङ्मय आदि।

(घ) सुयुक्त र के तीनों रूप मानक हैं यथा-धर्म, क्रम, राष्ट्र आदि।

(ङ) श्र, मान्य है श्र नहीं।

(च) हल् चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ इ की मात्रा का प्रयोग सम्बन्धित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जायेगा यथा-द्‌वितीय बुद्‌धिमान आदि।

(छ) संस्कृत के संयुक्ताक्षर पुरानी शैली में ही मान्य हैं यथा-विद्वान, विद्या आदि।

(2) विभक्ति चिह्न

(क) हिन्दी के विभक्ति चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा में प्रातिपादिक से पृथक् लिखे जाने चाहिए। यथा-राम ने, मंत्री को, छड़ी से, आदि। लेकिन सर्वनाम शब्दों में ये चिह्न प्रातिपादिक के साथ मिलाकर लिखे जाने चाहिए यथा उसने मुझको, तुमसे आदि।

(ख) सर्वनामों के साथ यदि दो विभक्ति चिह्न हो तो उसमें पहला मिलाकर और दूसरा पृथक लिखा जाना चाहिए।

(3) क्रियापद

संयुक्त क्रियाओं में सभी अंगभूत क्रियाएं अलग-अलग लिखी जानी चाहिए जैसे-काम करता है, चल सकता है आदि।

(4) हाइफन

(क) द्वन्द्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाना चाहिए जैसे-दिन-रात, राम-लक्ष्मण।

(ख) सा, जैसा आदि से पूर्व हाइफन का प्रयोग करना चाहिए-तुम-सा, हुंडी-जैसा आदि।

(ग) तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहां करो जहां भ्रम होने की सम्भावना हो। जैसे-भू-तत्व।

(घ) कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है जैसे द्वि-अर्थक, द्वि-दिवसीय आदि।

(5) अव्यय

(क) अव्यय सदा पृथक् लिखे जाने चाहिए जैसे दिन भर, स्कूल तक आदि।

(ख) सम्मानार्थक श्री तथा जी अव्यय भी अलग लिखने चाहिए जैसे श्री मान, मंत्री जी आदि।

(ग) समस्त पदों में अव्यय पृथक् नहीं लिखे जाने चाहिए-यथा प्रतिदिन, यथासमय आदि।

(6) श्रुतिमूलक

(क) जहां श्रुतिमूलक 'य' तथा 'व' का प्रयोग विकल्प से होता है, वहाँ इसका प्रयोग न किया जाए जैसे किए, नई, हुआ आदि का प्रयोग किया जाए न कि किये, नयी हुवा आदि।

(7) अनुस्वार एवं चन्द्रबिन्दु

(क) संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचम अक्षर के बाद सवर्गीय शेष चार वर्णों में से कोई वर्ण हो तो अनुस्वार का प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसे ठंडा, चंचल, संध्या आदि।

(ख) यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आये अथवा वही पंचमाक्षर दुबारा आये तो पंचपाक्षर अनुस्वार के रूप में नहीं प्रयोग होगा जैसे-वाङ्मय, अन्य, उन्मुख आदि।

(ग) जहां चन्द्रबिन्दु के प्रयोग से लेखन आदि में बहुत कठिनाई हो और चन्द्रबिन्दु के स्थान पर केवल बिन्दु लगाने से किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहां चन्द्रबिन्दु के स्थान पर केवल बिन्दु लगाया जा सकता है। किन्तु जहाँ आवश्यक हो वहां चन्द्रबिन्दु ही लगाना चाहिए।

8. संस्कशत तत्सम शब्दों की वर्तनी में सामान्यत: संस्कृत रूप ही रखा जाना चाहिए। किन्तु जिन शब्दों के प्रयोग में हिन्दी हल् चिन्ह लुप्त हो चुका है, उनमें उसको फिर से लगाने का प्रयास नहीं करना चाहिए यथा-महान् विद्वान आदि।

9. विसर्ग

हिन्दी के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए जैसे दु:खानुभूति। यदि उस शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बगैर भी काम चल जायेगा जैसे सुख दुख आदि।

10. पूर्वकालिक प्रत्यय

पूर्वकालिक प्रत्यय 'कर' क्रिया के साथ मिलाकर लिखा जाना चाहिए जैसे-मिलाकर, खुलकर, खाकर आदि।

11. विराम-चिन्ह

हिन्दी में पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग किया जाना चाहिए तथा शेष उन सभी विराम चिन्हों का प्रयोग किया जाना चाहिए जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी में प्रचलित हैं।

12. देवनागरी लिपि की लेखन-प्रणाली में शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा।

17.4 सारांश

देवनागरी आधुनिक भारतवर्ष की प्रधान लिपि है जिसमें हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत तथा मराठी भाषाएँ भी साधारणतया लिखी जाती हैं। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने पचपन-साठ वर्ष के इतिहास का नवनीत लेकर देवनागरी वर्णमाला का ऐसा रूप विकसित किया है कि वह सभी भारतीय भाषाओं को लिखने में समर्थ हो। आधुनिक युग में कम्प्यूटर के प्रयोग की स्थिति में भी मानक लिपि की आवश्यकता है जिससे प्रकाशन, शब्दकोश निर्माण, कम्प्यूटर वाचन आदि कार्यक्रम बन सकें।

17.5 कठिन शब्द

1) टंकण
2) मुद्रण
3) संशोधन
4) यांत्रिक
5) जटिल
6) अध्येता
7) प्रातिपादिक
8) शिरोरेखा

17.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र०1) देवनागरी लिपि की वर्णमाला में मानकीकरण के विभिन्न पक्षों पर विचार करें।

उ. ____

____

____

____

____

____

प्र०2) हिन्दी भाषा वर्तनी सम्बन्धी नियमों को स्पष्ट करें ?

उ. ____

____

____

____

____

____

17.7 सन्दर्भग्रन्थ/पुस्तकें

1. उदयनारायण तिवारी, भाषाशास्त्र की रूपरेखा।
2. भोलानाथ तिवारी, भाषाविज्ञान
3. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा
4. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास
5. कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय (1977), आधुनिक भाषा विज्ञान
6. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, हिंदी भाषा संरचना के विविध आयाम
7. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की ध्वनि संरचना।
8. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की संरचना।

– – – –

हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

18.0 रूपरेखा

18.1 उद्देश्य

18.2 प्रस्तावना

18.3 हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

18.4 निष्कर्ष

18.5 कठिन शब्द

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.7 पठनीय पुस्तकें

18.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप हिन्दी की वास्तविक संवैधानिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

18.2 प्रस्तावना

हिन्दी मध्य काल से ही सन्तों, महात्माओं, फकीरों, व्यापारियों सौनिकों तथा तीर्थ–यात्रियों द्वारा समस्त भारत में व्याप्त होकर राष्ट्रीय आत्मा की अभिव्यक्ति में समर्थ बन चुकी थी। फोर्ट विलियम कालेज के साथ–साथ टेक्स्ट बुक सोसायटी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद, हिन्दुस्तानी प्रचार सभा वर्धा, विद्यापीठ बम्बई, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा पुणे, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, हिन्दी प्रचार परिषद् बंगलौर आदि संस्थाएँ तथा धार्मिक और सामाजिक संस्थाएँ भी इस प्रचार–प्रसार में अग्रणी थीं। इनमें ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, प्रार्थना समाज, थियोसाफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन, राधास्वामी सम्प्रदाय विशेष उल्लेखनीय हैं। स्वातन्त्र्य सेनानियों की अगली पंक्ति में राजर्षि पुरूषोत्तमदास टण्डन, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, काका कालेलकर, सेठ गोविन्ददास और महात्मा

गाँधी का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की मान्यता पर ज़ोर दिया। सन् 1918 में इन्दौर के आठवें हिन्दी सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा– ''मेरा यह मत है कि हिन्दी को ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए।''

स्वतन्त्रता आन्दोलन का पर्याय बनी हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास होता रहा। तभी डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने कहा– ''मैं हिन्दी के प्रचार, राष्ट्रभाषा के प्रचार को राष्ट्रीयता का मुख्य अंग मानता हूँ।''

गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार का गैर सरकारी कार्यक्रम भी बनाया। काँग्रेस के सन् 1925 के कानपुर अधिवेशन में प्रस्ताव स्वीकृत कर अपने सभी कार्यो में, प्रादेशिक कमेटियों में प्रदेशिक भाषा और हिन्दी के प्रयोग को भी मान्यता दी। अखिल भारतीय पत्राचार में हिन्दी का प्रयोग बढ़ा। सन् 1920 में गाँधी जी ने बेलगांव में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। 'नवजीवन', 'यंग इण्डिया' जैसे पत्रों को हिन्दी में प्रकाशित करवाया। भारत छोड़ो आंदोलन के एक वर्ष पूर्व हिन्दी प्रचार को देश के रचनात्मक कार्यो में स्थान मिला।

विदेशियों ने भी यह महसूस किया था कि भारत को एक भाषा की जरूरत है और वह हिन्दी ही हो सकती है। सर्वप्रथम एडवर्ड टेरी अपने यात्रा विवरण में (सन् 1665 में प्रकाशित) हिन्दुस्तानी को भारत की बोलचाल की भाषा कहा। सन् 1704 में तुरोनेसिस ने 'लेक्सिकन लिगुंआ हिन्दोस्तानिका' प्रस्तुत किया। यह ग्रन्थ दक्षिण भारत में व्यापाररत डचों को हिन्दुस्तानी के शिक्षण के लिए प्रस्तुत किया गया। सन् 1715 में जे0 जे0 कैटेलेयर ने डच भाषा में हिन्दुस्तानी का प्रथम व्याकरण शिक्षण के लिए प्रस्तुत किया। सन् 1743 में लायडेन ने इसका लैटिन अनुवाद किया। सन् 1852 में गार्सा द तासी ने भी अखिल भारतीय हिन्दी स्वरूप को स्वीकार किया। ग्रियर्सन ने भी हिन्दी की अखिल भारतीय अस्मिता स्वीकार की।

स्वतन्त्रता आंदोलन की शुरूआत के साथ–साथ ही हिन्दी नवजागरण का काल प्रारम्भ होता है। सन् 1850 के पश्चात् भारतीय भाषाओं में जो साहित्य रचा गया वह अंग्रेजी भाषा और पश्चिमी विचार–शैली से प्रभावित था। किन्तु उसकी भावभूमि और शिल्प भारतीय थे और यहाँ की परंपरा से बँधे थे।

भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन कवियों ने अनेक राष्ट्रीय कवितायें लिखकर राष्ट्रीय आंदोलन को निखारा। सन् 1920 के आसपास हिन्दी भाषा का वह सम्पन्न रूप सामने आया जिसे विश्व की किसी भी भाषा के समक्ष रखा जा सकता है। राष्ट्रभाषा हिन्दी का नामकरण भले ही बाद में हुआ किन्तु इसका राष्ट्रीय स्वरूप भारतेन्दु और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग में ही उभरकर सामने आ गया था।

इस काल में यद्यपि हिन्दी शासन की उपेक्षा की शिकार थी किन्तु तत्कालीन जन–मन ने, नेताओं ने, संस्थाओं ने, रचनाकारों ने हिन्दी को देश की बहुमुखी प्रगति का सोपान मानकर भाषा को सुसंगठित करने, सम्पन्न बनाने और उसके स्वरूप को निखारने में अतुलनीय योगदान किया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ब्रज और

खड़ी–बोली–बाँगरू की साहित्यिक रचनाएँ मिले–जुले रूप में आ रही थीं। द्विवेदी तथा छायावादी युग तक आते–आते खड़ी बोली–बाँगरू परिमार्जित, परिष्कृत भावाभिव्यक्ति में समर्थ बन चुकी थी।

पं0 जवाहर लाल नेहरू प्रधानमंत्री के रूप में भी एक भाषा के समर्थक थे और वह थी, हिन्दी। ''मैं यह लेख प्रधानमंत्री की हैसियत से नहीं, बल्कि एक लेखक और एक ऐसे शख्स के तौर पर लिख रहा हूँ जिसे भाषा के सवाल में गहरी दिलचस्पी है। इस प्रश्न में मेरी दिलचस्पी उसके राजनैतिक और बदकिस्मती से साम्प्रदायिक पहलुओं के कारण है। लेकिन इनसे कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण इस प्रश्न के अधिक विशाल सांस्कृतिक पहलू हैं।........भाषा किसी राष्ट्र के चरित्र की ज्यादा बड़ी कसौटी है। अगर भाषा शक्तिशाली और ज़ोरदार होती है तो उसके इस्तेमाल करने वाले लोग भी वैसे ही होते हैं।........ हिन्दुस्तान में हम अपनी प्रान्तीय भाषाओं का विकास करने के लिए बँधे हुए है। यह ठीक ही है कि हमारी महान् प्रान्तीय भाषाओं का विकास हो। साथ ही हमें एक अखिल भारतीय भाषा भी चाहिए। यह भाषा अंग्रेजी या और कई विदेशी जबान नहीं हो सकती, हालाँकि मैं जानता हूँ कि उसकी जगत्व्यापी स्थिति और हिन्दूस्तान में उसके वर्तमान व्यापक–ज्ञान के कारण अँग्रेजी का हमारी भावी प्रवृत्तियों में महत्त्वपूर्ण साथ रहेगा। अखिल भारतीय भाषा कोई हो सकती है, तो वह सिर्फ हिन्दी या हिन्दुस्तानी–कुछ भी कह लीजिए, ही हो सकती है।.......... यह कोई बड़े महत्त्व की बात नहीं है कि हम इस भाषा को हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी, क्योंकि हकीकत यह है कि हर शब्द के पीछे एक इतिहास होता है।''

18.3 हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

राजभाषा हिन्दी : संवैधानिक स्थिति

भारत की भाषा समस्या और पूरे देश के लिए राजभाषा नियत करने के प्रश्न पर स्वतंत्र भारत के लिए संविधान सभा में चर्चा हुई। अंततः भारतीय संविधान की धारा 343 से 351 के अनुच्छेदों में राजभाषा का प्रावधान किया गया। ये अनुच्छेद चार अध्यायों में विभक्त हैं– (1) संघ की भाषा, (2) प्रादेशिक भाषा, (3) उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों की भाषा एवं (4) विशेष निर्देश। धारा 343 में संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी और देवनागरी को लिपि के रूप में मान्यता प्रदान की गयी।

अध्याय –1 : संघ की भाषा

343 (1) संघ की राजभाषा हिन्दी और देवनागरी इसकी लिपि होगी।

संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारम्भ से 15 वर्ष की कालावधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अँग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए ऐसे प्रारम्भ के ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

परन्तु राष्ट्रपति उक्त कालावधि में, आदेश द्वारा, संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अँग्रेजी भाषा के साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ–साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेंगे।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद विधि द्वारा, उक्त पन्द्रह साल की कालावधि के पश्चात् –

(क) अंग्रेजी भाषा का अथवा

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का,

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जैसे कि ऐसी विधि में उल्लिखित हो।

344 (1) राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारम्भ से पाँच वर्ष की समाप्ति पर, तथा तत्पश्चात् ऐसे प्रारम्भ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा एक आयोग गठित करेगा जो एक अध्यक्ष और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित भिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा। जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा तथा आयोग द्वारा अनुसरण की जानेवाली प्रक्रिया का आदेश परिभाषित करेगा।

(2) राष्ट्रपति को (क) संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा के उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग के (ख) संघ के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बन्धनों के, (ग) अनुच्छेद 348 में वर्णित प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए प्रयोग की जानेवाले भाषा के, (घ) संघ के किसी एक या अधिक उल्लिखित प्रयोजनों के लिए प्रयोग किये जाने वाले अंकों के रूप में, (ङ) संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच अथवा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच संचार की भाषा तथा उनके प्रयोग के बारे में राष्ट्रपति द्वारा आयोग से पृच्छा किये हुए किसी अन्य विषय के बारे में सिफारिश करने का आयोग का कर्त्तव्य होगा।

(3) खण्ड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का तथा लोक–सेवाओं के बारे में अहिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्रों के लोगों के न्यायपूर्ण दावों और हितों का सम्यक् ध्यान रखेगा।

(4) तीस सदस्यों की एक समिति गठित की जाएगी जिनमें से बीस लोकसभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्यसभा के सदस्य होंगे जो कि क्रमशः लोकसभा के सदस्यों तथा राज्यसभा के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।

(5) खण्ड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करना तथा उन पर अपनी राय का प्रतिवेदन राष्ट्रपति को करना समिति का कर्त्तव्य होगा।

(6) अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति खण्ड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् उस सारे प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश निर्गत कर सकेगा।

अध्याय–2 : प्रादेशिक भाषाएँ

345 अनुच्छेद 346 और 347 के उपबंधो के अधीन रहते हुए राज्य का विधान–मण्डल, विधि द्वारा, उस राज्य के राजकीय प्रयोजनों में से सब या किसी के लिए प्रयोगार्थ के उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अनेक को या हिन्दी को अंगीकार कर सकेगा।

परन्तु जब तक राज्य का विधान–मण्डल विधि द्वारा इससे अन्यथा उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतर उन राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी जिनके लिए इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

346 संघ में राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने के लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ के बीच में संचार के लिए राजभाषा होगी।

परन्तु यदि दो या अधिक राज्य करार करते हैं कि ऐसे राज्यों के बीच में संचार के लिए राजभाषा हिन्दी भाषा होगी तो ऐसे संचार के लिए वह भाषा प्रयोग की जा सकेगी।

347 तद्विषयक माँग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाए कि किसी राज्य के जनसमुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली किसी भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए तो वह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जैसा कि वह उल्लिखित करे राजकीय मान्यता दी जाए।

अध्याय – 3 : उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

348 (1) इस भाग के पूर्ववर्ती उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक

(क) उच्चतम न्यायालय में तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय में सब कार्यवाहियाँ

(ख) जो (1) विधेयक अथवा उन पर प्रस्तावित किए जाने वाले जो संशोधन, संसद के प्रत्येक

सदन में पुनः स्थापित किए जाएँ उन सबके प्राधिकृत पाठ, (2) अधिनियम जो संसद द्वारा या राज्य के विधान–मण्डल द्वारा पारित किए जायँ तथा जो अध्यादेश राष्ट्रपति या राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा प्रख्यापित किए जाएँ उन सबके प्राधिकृत पाठ तथा (3) आदेश, नियम, विनियम और उपविधि इस संविधान के अधीन अथवा संसद या राज्यों के विधान–मंडल द्वारा निर्मित किसी विधी के अधीन निकाले जाएँ उन सबके प्राधिकृत पाठ, अंग्रेजी भाषा में होंगे।

(2) खंड (1) के उपखंड (क) में से किसी बात के होते हुए भी, जहाँ किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से हिन्दी भाषा का या उस राज्य में राजकीय प्रयोजन के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग उस राज्य में मुख्य स्थान रखने वाले उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा –

परन्तु इस खंड की कोई बात जैसे उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश पर लागू न होगी।

(3) खंड (1) उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहाँ किसी राज्य के विधान–मण्डल ने, उस विधान मंडल के पुनः स्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्य प्रमुख या राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखंड की कंडिका (3) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा के अन्य किसी भाषा के प्रयोग को विहित किया है, वहाँ उस राज्य के राजकीय सूचना पत्र में उस राज्य के राज्यपाल या राज प्रमुख के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

349. इस संविधान के प्रारम्भ से 15 वर्षो की कालावधि तक अनुच्छेद 348 के खंड (1) में वर्णित प्रयोजनों में से किसी के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबंध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना पुनः स्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा तथा ऐसे किसी विधेयक के पुनः स्थापित अथवा ऐसे किसी संशोधन के प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर, तथा उस अनुच्छेद के खंड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ही राष्ट्रपति देगा।

अध्याय – 4 : विशेष निर्देश

350. किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी पदाधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभिवेदन देने का, प्रत्येक व्यक्ति को हक होगा।

351. हिन्दी भाषा की प्रसार–वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्त्तव्य होगा।

आगे चलकर हिन्दी के प्रयोग के सम्बन्ध में राष्ट्रपति ने 1952, 1955 तथा 1960 में तीन आदेश जारी किए, जो निम्नांकित हैं :

1952 का आदेश

राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 343 (2) के अधीन 27 मई, 1972 को एक आदेश जारी किया जिसमें (1) राज्यों के राज्यपालों, (2) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों तथा (3) उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के नियुक्ति अधिपत्रों के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी और अन्तर्राष्ट्रीय अंकों के अतिरिक्त देवनागरी के अंकों के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया था (अधिसूचना सं0 सां0 नि0 आ0 938 ए–दि0 27–5–52)।

राजभाषा आयोग

राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 344 (1) के आधार पर 1955 में राजभाषा आयोग की नियुक्ति की। आयोग की संस्तुतियों पर विचार करने हेतु अनुच्छेद 344 (4) के अधीन 30 संसद सदस्यों की एक समिति गठित की गयी। इस समिति ने आयोग की कुछ संस्तुतियों को यथावत् स्वीकार किया, कुछ में परिवर्तन और कुछ को अस्वीकार किया। आयोग की महत्त्वपूर्ण संस्तुतियाँ निम्नलिखित थीं :

1. पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की गति तो की जाये।
2. 14 वर्ष तक के प्रत्येक विद्यार्थी को हिन्दी का उचित ज्ञान कराया जाये।
3. माध्यमिक स्तर पर हिन्दी शिक्षण प्रत्येक भारतीय छात्र के लिए अनिवार्य किया जाये।

संसदीय समिति ने उपर्युक्त पहली सिफारिश को मान लिया। पर अंतिम दो, अस्वीकार करते हुए अखिल भारतीय तथा उच्च स्तरीय सेवाओं के लिए अंग्रेजी को जारी रखने का सुझाव दिया। इस समिति के अनुसार सन् 1965 तक भारत सरकार के राजकाज की प्रधान भाषा अंग्रेजी रहे और हिन्दी गौण। आयोग ने कर्मचारियों के हिन्दी न सीखने पर दण्ड की व्यवस्था की थी, इस समिति ने 45 वर्ष की आयु के ऊपर के कर्मचारियों को हिन्दी प्रशिक्षण से छूट दी।

1955 का आदेश

इस आदेश के तहत संघ के सरकारी कार्य (1) जनता के साथ पत्र व्यवहार, (2)प्रशासनिक रिपोर्ट सरकारी पत्रिकाएँ और संसद में प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्ट, (3) सरकारी संकल्प और विधायी अधिनियमितियाँ, (4) जिन राज्य सरकारों ने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपना लिया है, उनके साथ पत्र व्यवहार, (5) संधियाँ और करार, (6) अन्य देशों की सरकारों और उनके दूतों, और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र व्यवहार, (7) राजनयिक तथा काउंसिल अधिकारियों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में भारत के प्रतिनिधियों को जारी किए जाने वाले औपचारिक कागज (अधिसूचना सं0 59265 पब, दि0 3–12–55) में अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी के प्रयोग को प्राधिकृत किया गया।

राजभाषा आयोग का गठन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 344 (1) के आधार पर 1955 में राजभाषा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग की संस्तुतियों की जाँच के लिए संविधान के अनुच्छेद 344(4) के अनुसार 30 सदस्यों की एक समिति बनाई गयी। जिसमें 10 सदस्य राज्यसभा के तथा 20 सदस्य लोकसभा के थे। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन 1959 में राष्ट्रपति को दिया।

1960 का आदेश

राष्ट्रपति ने इस समिति के प्रतिवेदन पर विचार करके 1960 में तीसरा आदेश जारी किया जिसमें निम्नांकित निर्देश थे :

1. वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के निर्माण के लिए शिक्षा मंत्रालय को एक स्थायी आयोग स्थापित करना चाहिए।

2. शिक्षा मंत्रालय, साविधिक नियमों, विनियमों और आदेश के अतिरिक्त सभी मैनुअलों तथा कार्यविधि साहित्य का अनुवाद हाथ में ले और भाषा में एकरूपता सुनिश्चित करने की आवश्यकता की दृष्टि से यह काम केवल एक ही अभिकरण को सौंपा जाये।

3. एक मानक विधि शब्दकोश बनाने, हिन्दी में विधि के पुनः अधिनियम और विधि शब्दावली के निर्माण के लिए विृभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कानून के विशेषज्ञों का एक स्थायी आयोग स्थापित किया जाए।

4. तृतीय श्रेणी से नीचे के कर्मचारियों, औद्योगिक संस्थाओं के कर्मचारियों और कार्य–प्रभारित कर्मचारियों को छोड़कर उन सभी केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के लिए हिन्दी का सेवा कालीन

प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया जाये जिनकी आयु दिनांक 1–1–1961 को 45 वर्ष से कम हो। गृह मंत्रालय टंककों और आशुलिपिकों को हिन्दी टंकण तथा आशुलेखन प्रशिक्षण देने के लिए भी प्रबन्ध करे (अधिसूचना संख्या 2/8/60–रा0 भा0, दिनांक 27–4–60)।

1963 का राजभाषा अधिनियम

इस अधिनियम के तहत 26 जनवरी 1965 से अगले 15 वर्षों तक अंग्रेजी का प्रयोग यथावत् होते रहने के लिए प्रावधान बनाए गए और जब तक अहिन्दी राज्यों की विधायिका न चाहे हिन्दी का प्रयोग प्रतिबंधित रहेगा। इसी में 10 वर्षों बाद राजभाषा के प्रयोग के आकलन के लिए 30 सदस्यीय संसदीय समिति के गठन का प्रावधान रखा गया। केन्द्रीय अधिनियमों, विधेयकों आदि के प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद की व्यवस्था इस अधिनियम द्वारा अनिवार्य की गई। जम्मू–कश्मीर को छोड़कर अन्य राज्यों द्वारा कतिपय दशाओं में राज्य अधिनियमों प्राधिकृत हिन्दी की अनिवार्यता अनुवाद तथा उच्च न्यायालय के निर्णयों आदि में अंग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी या अन्य राजभाषा के वैकल्पिक प्रयोग की छूट दी गई। वस्तुतः राजनीतिज्ञों ने देश की एकता, अखण्डता संस्कृति की परवाह किए बिना, एक ऐसा प्रावधान किया जिससे स्वतन्त्र भारत में कोई एक भाषा कभी भी सबकी भाषा नहीं बन सकेगी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हर भारतीय तक पहुँची हिन्दी राजनीतिक नेताओं की नीति के तहत जन–सामान्य से दूर हो रही है।

1968 में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित संकल्प

उपर्युक्त अधिनियम के अनुसार सन् 1968 में संसद के दोनों सदनों ने एक संकल्प पारित किया। इस संकल्प के अनुसार (1) हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए प्रयास हो तथा हर वर्ष उसके प्रयोग का लेखा–जोखा संसद के पटल पर रखा जाए। (2) आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं के सामूहिक विकास के लिए राज्य–सरकार के परामर्श और सहयोग से कार्यक्रमों का निर्धारण हो और (3) त्रिभाषा–सूत्र का पालन हो, (4) संघ–लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में अंग्रेजी, हिन्दी के साथ–साथ आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं को माध्यम बनाया जाए, (5) संघ–सेवाओं के लिए अंग्रेजी का ज्ञान होने पर हिन्दी ज्ञान की अनिवार्यता समाप्त मानी जाए।

1976 का अधिनियम

यह 1963 में पारित अधिनियम का पूरक है। इसमें भारत को भाषिक धरातल पर क, ख, ग क्षेत्रों में बाँटा गया (1) क क्षेत्र में बिहार, झारखण्ड, हरियाणा, हिमाचल, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उतराँचल और दिल्ली को (2) ख क्षेत्र में गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, अंडमान–निकोबार द्वीप समूह तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों को, तथा (3) ग क्षेत्र में भारत के शेष राज्यों को रखा गया है। इस अधिनियम के अनुसार

विशेष दशा को छोड़कर केन्द्र सरकार द्वारा क क्षेत्र में सामान्यतः हिन्दी में पत्र–व्यवहार और अंग्रेजी में भेजे गए पत्र के साथ हिन्दी अनुवाद, ख क्षेत्र में हिन्दी और अंग्रेजी में और ग क्षेत्र में अंग्रेजी में पत्र भेजे जाएँ। ग क्षेत्र में हिन्दी अनुवाद भेजे जाने की आवश्यकता नहीं हैं। केन्द्रीय कर्मचारियों के आवेदन, अभ्यावेदन आदि, केन्द्रीय कार्यालयी टिप्पणियों आदि के लेखन में हिन्दी या अंग्रेजी या विनिश्चय द्वारा किसी एक भाषा के प्रयोग की छूट दी गई। अर्थात् 28 वर्ष बाद अंग्रेजी को केन्द्रीय कार्यालयों की भाषा बना दिया गया। मैनुअल, संहिताओं, प्रक्रिया सम्बन्धी अन्य साहित्य, केन्द्रीय सरकारी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्रारूप, नामपट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें अंग्रेजी और हिन्दी में मुद्रित या उत्कीर्ण होगी, पर आवश्यकतानुसार उसे किसी या सभी उपबंधों से मुक्त कर सकती हैं।

वस्तुतः 1976 के अधिनियम (1) हिन्दी प्रयोग की अनिवार्यता से शासक वर्ग मुक्त हो, (2) और हिन्दी के प्रयोग को सीमित कर दिया, (3) हिन्दी से मिलते–जुलते भाषाक्षेत्रों, बंगाल, उड़ीसा और असम को 'ग' सूची में डाल दिया और इन्हें भविष्य में हिन्दी विरोध के लिए अवसर प्रदान किया गया। जहाँ हिन्दी का विरोध पहले दक्षिण में था, वहीं उसे पूर्वात्तर राज्यों में भी फैलाया गया।

सन् 1975 में राजभाषा विभाग ने राजभाषा के सम्बन्ध में कई कार्यालय ज्ञापन निकाले। इनमें हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कई कार्यक्रम हैं। सन् 1971 में गृह मंत्रालय के अधीन नियमों, उपनियमों तथा प्रपत्रों आदि के अनुवाद के लिए केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की गई। सन् 1984 तक विभिन्न मंत्रालयों में वरिष्ठ हिन्दी अधिकारियों की नियुक्तियाँ हुई। पच्चीस से अधिक कर्मचारियों के कार्यालयों में हिन्दी प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ गठित की गईं। मंत्रियों की अध्यक्षता में सलाहकार समितियाँ भी गठित हुईं। अनेक प्रलेख हिन्दी में निर्गत हुए। विज्ञान तकनीकी में हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन को बढ़ावा देने के लिए अनेक पुरस्कार नियत किए गए, खाद्य और नागरिक आपूर्ति मंत्रालय, पर्यटन तथा नागर विमानन मंत्रालय एवं श्रम मंत्रालय इनमें प्रमुख हैं।

इस बीच विभिन्न मंत्रालयों में प्रयोग के लिए हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावलियों का भी निर्माण हुआ। बैंकिंग, आयकर शब्दावली भी हिन्दी में तैयार हुई।

18.4 निष्कर्ष

हिन्दी राजभाषा है, उसका प्रयोग क्रमशः बढ़ रहा है, पर शासन के प्रयोग में अंग्रेजी का बाहुल्य बढ़ गया है। नियमानुसार भारतीय राजदूतों को हिन्दी का प्रयोग करना चाहिए, पर वे अंग्रेजी के मोह को छोड़ पाने में असमर्थ हैं। हमारे नेता विदेशों में ही नहीं देश में भी वार्ताओं, व्याख्यानों में अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। सन् 1992 में सम्पन्न हैदराबाद का काँग्रेस अधिवेशन इस बात का प्रमाण है।

भारत में हिन्दी की इस दुर्दशा का प्रभाव विदेशियों पर भी पड़ा है। विदेशियों में हिन्दी सीखने की होड़ लगी थी। अनेक देशों ने हिन्दी शिक्षण की व्यवस्था की, किन्तु जब उन्होंने यह अनुभव किया कि भारत को ही हिन्दी की जरूरत नहीं है और उनका काम अंग्रेजी में चल सकता है तो अनेक देशों ने हिन्दी शिक्षण व्यवस्था को या तो समाप्त कर दिया या उसे महत्त्व देना बन्द कर दिया।

18.5 कठिन शब्द

1. विद्यापीठ
2. अधिवेशन
3. सुसंगठित
4. परिमार्जित
5. अनुच्छेद
6. उपबंध
7. प्राधिकृत
8. समिति
9. प्रतिवेदन
10. आशुलिपि

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1 हिन्दी की संवैधानिक स्थिति पर प्रकाश डालें।

उ. ____

____

____

____

____

____

प्रश्न 2 क्या हिन्दी की संवैधानिक स्थिति अच्छी है, स्पष्ट करें।

उ. ____

____

____

____

____

____

प्रश्न 3 संवैधानिक रूप से हिन्दी की जो स्थिति होनी चाहिए, क्या वह उसी रूप में है ?

उ. ____

____

____

____

____

____

18.7 पठनीय पुस्तकें

1. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी भाषा – सूरजभान सिंह
3. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – कपिलदेव द्विवेदी
4. आधुनिक भाषा – विज्ञान – डॉ. राजमणि शर्मा
5. भाषा विज्ञान – डॉ. अनुज प्रताप सिंह